रहीम-रत्नावली

सम्पादक
मयाशंकर याज्ञिक बी. ए.

काव्य-ग्रन्थरत्न-माला—रत्न ६

रहीम-रत्नावली

(रहीम की आज तक की प्राप्त कविताओं का सबसे बड़ा संग्रह)

सम्पादक

मयाशंकर याज्ञिक बी. ए.

प्रकाशक—

साहित्य-सेवा-सदन,

बुलानाला, काशी ।

नवीनावृत्ति] गंगादशहरा, १९८५ वि० [मूल्य १)

प्रकाशक—

गयाप्रसाद शुक्ल, एम. ए., एलएल. बी.,

साहित्य-सेवा-सदन,

बुलानाला, काशी

मुद्रक—
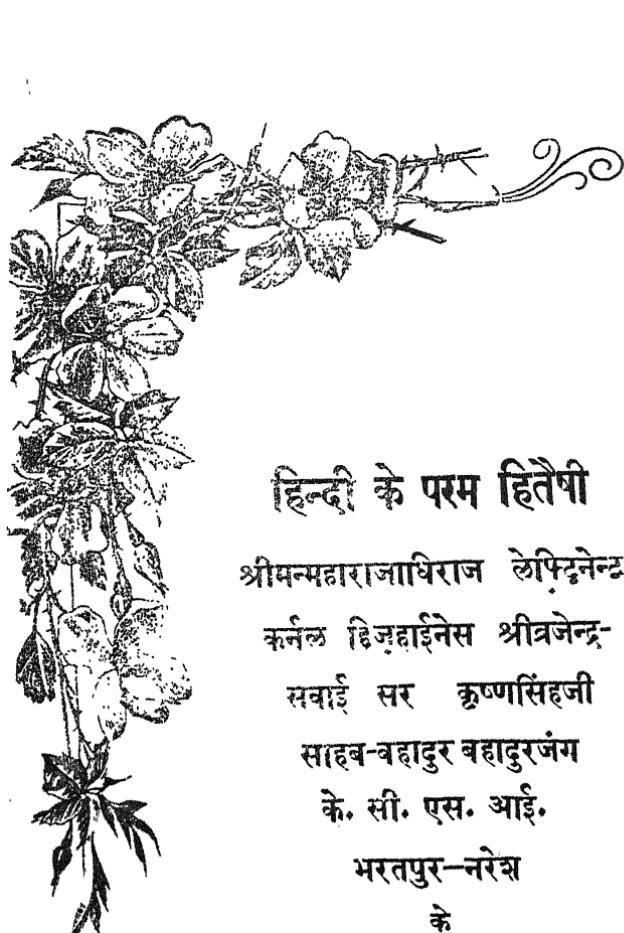
बलवंत लक्ष्मण पावगी

हितचिन्तक प्रेस,

रामघाट, काशी

लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिज़हाईनेस श्रीव्रजेन्द्र सवाई सर कृष्णसिंहजी साहब बहादुर, बहादुरजंग के. सी. एस. आई.

हिन्दी के परम हितैषी

श्रीमन्महाराजाधिराज लेफ्टिनेन्ट

कर्नल हिज़हाईनेस श्रीब्रजेन्द्र-

सवाई सर कृष्णसिंहजी

साहब-बहादुर बहादुरजंग

के. सी. एस. आई.

भरतपुर-नरेश

के

करकमलों में सादर समर्पित।

१-९२
१
३
१०
१३
१९
३४
५२
७९
९१
१-८४
१
२८
४०
६३
७३

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय निवेदन

आज से कोई चार वर्ष पूर्व हमने उस समय तक की प्राप्त रहीम की कविताओं का एक संग्रह रहिमन-विलास के नाम से प्रकाशित किया था। हिन्दी-संसार ने उसे अपनाया, और उसका पहला संस्करण आठ दस महीने में ही चुक गया।

कहा जाता है कि बिहारी, मतिराम, वृन्द आदि कवियों की भाँति रहीम ने भी एक "सतसई" लिखी है। रहीम की इस सतसई तथा उनकी अप्रकाशित और अप्राप्त रचनाओं की खोज हम अपने रहिमन-विलास के प्रकाशन के बाद से ही बराबर करते रहे। इसके लिये हमें अपने एक मित्र को पटना, जयपुर आदि कई जगह भेजना पड़ा। भरतपुर में, संयोगवश, हिन्दी-साहित्य-संसार के चिर-परिचित पंडित मयाशंकरजी याज्ञिक से उनकी भेंट हुई। याज्ञिकजी ने हस्त-लिखित पुस्तकों का अपना बृहत् संग्रहालय उन्हें दिखाया। उस संग्रहालय में रहीम के दो नवीन और अप्रकाशित ग्रंथ तथा उनकी कुछ फुटकर रचनाएँ मिलीं। तभी से हमने इनके लिये याज्ञिकजी से तक़ाज़ा करना आरम्भ कर दिया। बाद मुद्दत के इन ग्रंथों और रचनाओं का संग्रह, जिस के अन्तर्गत उक्त रहिमन-विलास की भी रचनाएँ हैं, सम्पादित रूप में हमें प्राप्त हुआ, और हमने उसे छापना शुरू किया। बीच में अनेक बाधाओं के आ पड़ने के कारण पुस्तक के छपने में बहुत विलंब हो गया—कोई डेढ़ वर्ष लग गया। इस अरसे में तो पुस्तक का एक संस्करण और हो जाता। इसी देर के कारण छपाई तथा काग़ज़ के रंग-रूप

में विशेष अंतर आ गया है। मुद्रक की असावधानी तथा पुस्तक का अधिकांश मेरी अनुपस्थिति में छपने के कारण बहुत सी अशुद्धियाँ रह गयी हैं। इन अशुद्धियों तथा अन्य त्रुटियों का हमें खेद है। अगले संस्करण में हम इन्हें दूर करने का प्रयत्न करेंगे। आशा है, उदारचेता ग्राहकगण हमें क्षमा करेंगे, और त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए, ऐसा प्रयत्न करेंगे कि हमें निकट भविष्य में ही पुस्तक का परिवर्द्धित, संशोधित तथा सर्वांग सुंदर संस्करण निकालना पड़े।

खोज में रहीम के कुछ और छन्द हमें इधर हाल में मिले हैं। इन्हें हम पुस्तक के आगामी संस्करण में स्थान देंगे।

साहित्य-सेवा-सदन कार्यालय, काशी
गंगादशहरा, १९८५ वि०

गयाप्रसाद शुक्ल
व्यवस्थापक

श्रीहरिः

भूमिका

प्राक्कथन

अकबर के राजत्व काल में मुग़ल–साम्राज्य का विस्तार हुआ और उसके साथही राजा-प्रजाको शान्तिपूर्ण जीवन-निर्वाह का अवसर भी मिला। सम्राट् अकबर को युद्धक्षेत्रों में बहुत काल तक व्यस्त रहना पड़ा, परन्तु उसके प्रताप से साम्राज्य में, और विशेष कर राजधानी में, ऐसी सुव्यवस्था होगई थी कि साहित्य, कला, इतिहास, धर्म, राजनीति आदि विषयों की ओर लोगों को ध्यान देने का अवकाश मिल सका था। हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर सद्भाव की जागृति होने लगी थी और दोनों की सभ्यता, विचार, धर्मनीति में घोर संघर्षण के स्थान में शान्ति पूर्ण प्रभाव पड़ने लगा था। क्रूरकर्मा यवन जाति से विजित हिन्दू प्रजा अपनी सभ्यता और धर्म की रक्षा करने में नितान्त असमर्थ हो चली थी; परन्तु अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिये मुग़लों ने हिन्दुओं के साथ व्यवहार बद्लना नीतिपूर्ण समझा। इसका फल यह हुआ कि अकबर की उदार नीति ने हिन्दुओं के आचार और धर्म को तिरस्कार की दृष्टि से न देख कर उन्हें पुनः जागृत होने का अवसर दिया। हिन्दुओं ने भी इसका पूर्ण लाभ उठाया। अकबर ने स्वयं संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी भाषान्तर कराया। शास्त्रीय गान-विद्या का प्रचार हुआ। कला की भी उन्नति हुई। और हिन्दू प्रजा के मन से पद्दलित और विजित होने का भाव कम होने लगा। परन्तु सब से महत्त्व की बात जो इस काल में हुई वह

हिन्दी काव्य की उन्नति थी । अकबरी दरबार के नवरत्न इतिहास में प्रसिद्ध हैं । उनमें से कई हिन्दी के उत्तम कवि थे और कवियों के आश्रयदाता थे । हिन्दी हिन्दुओं की भाषा थी इसलिये राजदरबार में वह अनादृत नहीं थी । वरन् वह हिन्दू और मुसलमान दोनों की भाषा थी । अकबर स्वयं हिन्दी में कविता करता था और उसकी फुटकर कविताएँ अब भी मिलती हैं । दूसरे, वैष्णव धर्म के प्रचार से भी हिन्दी भाषा की अपूर्व उन्नति हो रही थी । भक्ति-भाव भाषा रूप में व्यक्त होकर व्रजभूमि से उमड़ कर दूर देशों को भी प्लावित करने लगा था । सूर और अष्टछाप से अन्य कवि इसी समय भाषा को अलंकृत कर रहे थे । तुलसी की प्रतिभा इसी काल में अपनी अद्वितीय ज्योति दिखा गई । ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने हिन्दी को एक सर्वोच्च और समुन्नत भाषा बना दी । उर्दू का जन्म होचुका था और मुसलमानी राज्य में फ़ारसी का आदर होना स्वाभाविक ही था । परन्तु उस कालमें हिन्दी की जो उन्नति हुई वह अन्य किसी भाषा की न हुई । यदि राजा टोडरमल एक भारी भूल न कर देते, तो संभव है कि आज हिन्दू और मुसलमान अपनी दो अलग भाषा न कहते और हिन्दी ही सब की एक भाषा, साहित्य तथा बोलचाल की, होती । राजा टोडरमलने फ़ारसी को राजभाषा बनाया था । खेद है कि एक हिन्दू ने भूल की, जिसका दुष्परिणाम आज देश भर को भोगना पड़ रहा है । फिर भी उस समय भाषा से किसी को द्वेष नहीं था । मुसलमान उसके साहित्य की वृद्धि करने में संकोच नहीं करते थे । पर, आज कितने थोड़े मुसलमान हैं जो हिन्दी जानते हैं या उसके साहित्य को समझते हैं ! आज तो 'हिन्दू' की तरह 'भाषा' शब्द ही उनके लिये तिरस्कार योग्य है ।

अकबर के समय से पूर्व ही भाषा के बलवती और समुन्नत होने के साधन उत्पन्न हो चुके थे। चन्द, अमीर खुसरो, कबीर, नानक, जायसी, बाबा गोरखनाथ आदि ने अपनी रचनाओं से काव्य के विशेष अंगों की पुष्टि करदी थी। परन्तु अकबर के समय में जो उन्नति अल्पकाल में ही हुई वह फिर भी आश्चर्यजनक है। वीरगाथा, प्रेमगाथा, धर्म, नीति, और समाजसुधार के विचार इन कवियों ने भली प्रकार भाषा में व्यक्त करदिये थे। अकबर के काल में हिन्दू वीरता के गुणगान का पूर्ववत् उत्साह तथा समय बीत चुका था। वीरगाथा के दिन निकल चुके थे। मुसलमानों के प्रभाव से प्रेमगाथा की ओर रुचि विशेष होगई थी। वीर रस के स्थान में शृंगार का प्राधान्य होगया था और धार्मिक भावों में भक्ति का स्रोत उमड़ चला था। हिन्दू और मुसलमान-सभ्यता के संघर्ष से कबीर और नानक की वाणी प्रवाहित हुई। इन्हीं कारणों से अकबर के समय से पूर्व ही हिन्दी का रूप ऐसा बन चुका था कि सुअवसर पाते ही उसमें प्रौढ़ता आगई और उसकी श्रीवृद्धि में अनेक हिन्दू और मुसलमान प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने भाग लिया।

इन्हीं में से नवाब अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना—हिन्दी जगत के विख्यात रहीम वा रहिमन—हुए जिनका व्यापक पाण्डित्य, अनेक भाषाओं में काव्य रचना की क्षमता और विशेष कर हिन्दी साहित्य की सेवा बड़े महत्त्व की थी।

कविपरिचय

नवाब अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना का जन्म संवत् १६१३ वि० में लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरामखां ख़ान-ख़ाना था। और माता जमाल ख़ां मेवाती की छोटी बेटी थी। उसकी बड़ी बेटी से हुमायूं ने स्वयं विवाह किया था। बैराम

खां छोटी अवस्था से ही हुमायूं बादशाह के दरबार में रहने लगा था और धीरे धीरे अपनी कार्य-कुशलता से बड़ा सरदार और बादशाह का विश्वस्त आदमी बन गया था। कन्नौज की लड़ाई में बैरामखांने बड़ी वीरता दिखाई थी। जब हुमायूं हार कर फ़ारिस भाग गया तो बैराम ख़ां भी बादशाह से वहां जा मिला और फिर भारत पर चढ़ाई कर उसने हुमायूं को राज्य दिलवाया। बैरामखां के युद्ध-कौशल और पराक्रम के कारण मुग़ल वंशने फिर एक वार भारत का साम्राज्य प्राप्त किया। हुमायूं ने प्रसन्न होकर युवराज अकबर की शिक्षा का भार भी बैरामख़ां को ही सौंपा और अपने अन्त समय पर राज्य-प्रबंध भी बैराम खां को देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया।

अकबर के शत्रुओं को भी बैरामखाँ ने परास्त किया और मुग़ल साम्राज्य को सुदृढ़ कर दिया। परन्तु अकबर जब बड़ा हुआ और राजकाज स्वयं सँभालने लगा तो बैरामखां का हस्तक्षेप उसे पसंद न आया। दोनों में मनोमालिन्य होगया। और अन्त में बात यहां तक बढ़ी कि बैराम ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। अकबर उदार प्रकृति का मनुष्य था। बैरामखां को उसने क्षमा प्रदान की, परन्तु हज्ज के लिए जाने को बाध्य किया। एक राज्य में दो अधिपति भला कैसे रह सकते थे? अकबर और बैरामखां के झगड़े क़ैसर और बिस्मार्क के मनो-मालिन्य की याद दिलाते हैं।

बैराम स्त्री पुत्र सहित हज्ज को जाती समय मार्ग में पाटन में ठहरा। वहां एक अफ़ग़ानी ने पुरानी शत्रुता के कारण अवसर पाकर उसको मार डाला। उस समय अब्दुर्रहीम की अवस्था केवल ४ वर्ष की थी। अकबर को यह समाचार मिला तो उसने तुरंत बालक और उसकी मा को आगरे बुला भेजा। अब्दुर्रहीम को एक होनहार बालक जानकर अकबर

ने उसे अपने पास ही रक्खा और शिक्षा का अच्छा प्रबंध कर दिया। तीव्र बुद्धि बालक ने विद्या प्राप्त करने में पूर्ण परिश्रम किया और अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी भाषा का अच्छी प्रकार अभ्यास कर लिया।

अकबर ने ही इनका विवाह भी ख़ाने आज़म की बहिन माहबानू बेगम से कर दिया। जब बादशाहने गुजरात पर चढ़ाई की तो ये भी साथ गये और वहां पाटन की जागीर प्राप्त की। दूसरी बार फिर गुजरात की लड़ाई में रहीम गये तो वहां की सूबेदारी मिली। युद्ध का अनुभव, विजय और उच्चपद तथा जागीर सभी मिले और भाग्य का उदय हुआ। फिर मेवाड़ की लड़ाई में इनको जाने की आज्ञा हुई। दो वर्ष तक मेवाड़ में रहे और अन्त में जब उदयपुर को जीत लिया तो बादशाह ने दरबार में बुला कर मीर अर्ज़ का ऊँचा ओहदा दिया जो अत्यंत विश्वासपात्र सरदार को दिया जाता था। थोड़े दिन बाद अजमेर की सूबेदारी खाली हुई। वह भी बादशाह ने इनको देदी और साथ में रणथम्भौर का किला भी दिया। कुछ समय बाद बादशाह ने रहीम को शाहजादे सलीम का शिक्षक नियत किया। शिक्षक का कार्य करने में जो समय मिलता था उसमें 'वाक़यात बाबरी' का तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद किया जो अकबर को बड़ा पसंद आया और जौनपुर का इलाका इसके इनाम में रहीम ने पाया।

जब अकबर ने पहिली बार गुजरात को जीता था तो मुज़फ्फ़र सुलतान को बन्दी कर लिया था। मुज़फ्फ़र किसी प्रकार निकल भागा और सेना एकत्र कर फिर गुजरात में उत्पात मचाने लगा। विद्रोह शान्त करने के लिए रहीम को फिर भेजा गया। इस बार विजय प्राप्त करना सहज नहीं था—रहीम इस बात को जानते थे। अहमदाबाद भी मुज़फ्फ़र

के हाथ आचुका था। रहीम ने थोड़ी सी सेना लेकर ही युद्ध छेड़ दिया। अहमदाबाद से तीन मील दूरी पर युद्ध हुआ और रहीम ने स्वयं अद्भुत पराक्रम, वीरता और निर्भीकता का परिचय दिया। मुज़फ्फ़र को, अधिक सेना होने पर भी, भागते ही बना और उसने खम्भात में जाकर शरण ली। एक बार फिर सर उठाने पर रहीम ने उसको जंगलों में ही प्राण-रक्षा के लिए भटकते छोड़ा। इस विजय से रहीम का यश और भी अधिक बढ़ गया। अकबर ने ख़ानख़ाना की पदवी से विभूषित किया और पाँच हज़ारी मनसब भी दिया। इस प्रकार रहीम ने अपने पिता की पदवी प्राप्त कर ली। इस युद्ध के पूर्व रहीम ने प्रतिज्ञा की थी कि विजय लाभ करने पर वे अपना सब कुछ बाँट देंगे। किया भी वैसा ही। यहां तक कि बचा हुआ कलमदान भी दे डाला। इसके बाद बादशाह ने जौनपुर की जागीर भी उनको दी और मुग़ल साम्राज्य का सब से ऊँचा पद अर्थात् वकील भी, जो राजा टोडरमल की मृत्यु से खाली हुआ था, ख़ानख़ाना को दिया गया। बैरामखाँ को भी यह पद प्राप्त था।

रहीम ने अवसर निकाल कर 'तुज़ुके बाबरी' का, जिसमें बाबर बादशाह ने तुर्की भाषा में अपना जीवनचरित्र लिखा था, फ़ारसी में अनुवाद कर लिया था। अकबर जब काश्मीर और काबुल से लौट रहा था तो रहीम ने अनुवाद पेश कर सुनाया। बादशाह अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर रहीम को सिंध विजय के लिए जाना पड़ा। वहां भी उन्हों ने विजय लाभ की। सिंध का जीतना मुज़फ्फ़र के विरुद्ध जो युद्ध किये थे उनसे किसी प्रकार सहज नहीं था। रहीम भाग्यशाली और पराक्रमी थे। लड़ाई जीत कर आये और मुलतान की जागीर बादशाह से पाई।

अहमदनगर के सुलतान मर गये तो उनके राज्य में गड़-बड़ी मची। अकबर ने सुलतान मुराद और ख़ानख़ाना को दक्षिण भेजा। इन दोनों में न बनी। अहमदनगर में जीत तो शाही फ़ौज की ही हुई, परन्तु परस्पर अनबन के कारण बड़ी कठिनाई हुई। बादशाह के बेटे से अनबन हो जाने के कारण रहीम के भाग्य ने भी पलटा खाया। जीत तो होगई और खुश में रहीम ७५ लाख रुपया भी लुटा बैठे, परन्तु यश नहीं मिला। उन्हीं दिनों इनकी बेगम का भी देहान्त हो गया। दक्षिण में उपद्रव शान्त न हो सका और रहीम को कई बार जाना भी पड़ा। खानदेश का सूबा बनाया गया और सुलतान दानियाल सूबेदार और ख़ानख़ाना दीवान नियत किये गये। ख़ानख़ाना ने अपनी लड़की का विवाह दानियाल से कर दिया।

अकबर की मृत्यु होते ही दक्षिण ने फिर सर उठाया। मलिक अंबर ने औरंगाबाद बसा कर अहमदनगर भी छीन लिया। बादशाह जहांगीर की आज्ञा पाकर ख़ानख़ाना मुक़ाबले पर गये, परन्तु शाहजादा परवेज़ भी पीछे से मदद को भेजागया। इन दोनों की परस्पर न बनी। लड़ाई में हार हुई। ख़ानख़ाना पर दोष लगाया गया और वे दरबार में वापिस बुला लिये गये। कन्नौज और कालपी का विद्रोह शान्त कर ख़ानख़ाना फिर दक्षिण भेजे गये। साथ में इनका बड़ा लड़का शाहनवाज़खां भी था जिसने मलिक अंबर को अच्छी तरह परास्त किया। बाद में शाहज़ादे ख़ुर्रम को भी दक्षिण जाना पड़ा। गोलकुंडा और बीजापुर के सुलतानों को अधीनता स्वीकार कर सन्धि करनी पड़ी। ख़ानख़ाना को खानदेश बरार अहमदनगर की सूबेदारी मिली और उनकी पौत्रीसे शाहजहां का विवाह हुआ। जब ख़ानख़ाना दरबार में आए तो सात हजारी मंसब बादशाह ने दिया। उच्चपद की प्राप्ति तो हुई परन्तु

थोड़े दिनों में ख़ानख़ाना का बड़ा लड़का शराबी होने के कारण मर गया और फिर दूसरे पुत्र का भी देहान्त होगया। ख़ानख़ाना के भाग्य ने पलटा खाया। नूरजहां ने चाल चल कर परवेज को युवराज पद दिला दिया और ख़ानख़ाना का पद महाबतखां को दिलवाया। शाहजहां और ख़ानख़ाना ने विद्रोह किया और जहांगीर ने परवेज़ को दमन के लिए भेजा। ख़ानख़ाना ने शाहजहां को धोखा देकर महावतखां से छिपकर मेल करना चाहा। भेद खुलने पर शाहजहां ने ख़ानख़ाना को बन्दी कर लिया। किसी तरह क्षमा प्रार्थना कर शाहजहां का फिर साथ दिया, परन्तु ख़ानख़ाना का विश्वास किसी को न रहा। परवेज से मेलकी बातचीत करने गये तो फिर शाहजहां को धोखा देकर महावतखां से जा मिले। शाहजहां को भागना पड़ा परन्तु ख़ानख़ाना के लड़के को अपने काबूमें रखा। उधर महावतखां को भी ख़ानख़ाना पर विश्वास नहीं था उसने इन्हें क़ैद कर लिया। जहांगीर ने किसी प्रकार खानखाना को छुड़ाया और फिर कृपा कर उनको क्षमा प्रदान की और इनको पदवी और मंसब भी दे दिये।

नूरजहां ने महावतखां को भी अप्रसन्न करदिया और जब वह विद्रोही होगया तो ख़ानख़ाना को उसपर चढ़ाई करने भेजा। महावतखां ने अवसर पाकर जहांगीर को पकड़ लियाथा। परन्तु ख़ानख़ाना महावत पर चढ़ाई करने के पहिले ही दिल्ली में मर गये। यह घटना सं० १६८६ वि० में हुई जब रहीम की अवस्था ७२ वर्ष की थी।

ख़ानख़ाना का समय विशेष कर लड़ाइयों में ही बीता। अकबर के समय में गुजरात, सिंध और बीजापुर की लड़ाइयों को जीतकर ख़ानख़ाना ने बड़ाही पराक्रम दिखाया था। प्रतिष्ठा और राज्य सम्मान भी प्राप्त किये थे। जहांगीर के समय

में वह बात नहीं रही। इन्हों ने भी कई बार बेढब चाल चली। इनके चार पुत्र थे। वे इनके जीतेजी ही मरगये थे। राजनैतिक हलचलों में भाग लिये बिना ख़ानख़ाना को दूसरी गति नहीं थी और इसी कारण जागीर, पद आदि प्राप्त होने पर भी इनका जीवन सुखमय नहीं रहा।

ख़ानख़ाना का मकबरा दिल्ली में है। परन्तु उसकी भग्नावस्था देखकर चित्त को क्लेश होता है कि रहीम जैसे अनेक गुण-सम्पन्न दानी की क़ब्र के पत्थर तक लोग निकाल कर ले गए। काल की गति विचित्र है!

इनका विस्तृत जीवनचरित्र मुंशी देवीप्रसाद कृत ख़ानख़ाना नामा में दिया हुआ है। हिन्दी में इसके सदृश दूसरी ऐतिहासिक जीवनी नहीं है।

ख़ानख़ाना में अनेक गुण थे। जो बहादुरी और वीरता इन्होने छोटी अवस्था से ही रणक्षेत्र में दिखलाई उससे अकबर भी चकित हो गया था। इतनी थोड़ी अवस्था में ऐसा युद्ध-कौशल दिखलाया कि जब कभी संकट आकर पड़ा तो अकबर ने इन्हीं पर भरोसा किया। अपने गुणों के कारण इनको यश और सम्मान दोनो ही प्राप्त हुए। धन भी इनके पास अटूट था। देशमें कई जगह इनकी जागीरें थीं। राजसी ठाठ से रहना इनको पसंद था और वैसेही रहते भी थे। महल, उद्यान और हम्माम इन्होंने जगह-जगह बनवाये थे। जैसे धनी थे वैसे ही दानी भी थे। उदारता इतनी बढ़ी हुई थी कि ख़ानख़ाना एक आदर्श दानी समझे जाते थे। शौर्यसे अधिक प्रशंसा इनकी दानवीरता की थी। समस्त देश में इनके दान की महिमा सुनाई देती थी। गुणीजनों का आदर भी इनके यहाँ खूब होता था। इतिहास में इस बात के कई उदाहरण भी मिलते हैं। ऐसे महापुरुष का भी जीवन सुखी न रहा! इनके एक लड़के का सिर तो

तरबूज़ की तरह काट कर भेंट किया गया था। बाकी और इनके जीतेही मर गये थे। राज्य-तृष्णा ने इन्हे बढ़ा चढ़ा कर भी गिराया। यहांतक कि कई बार इनको अत्यंत आर्थिक कष्ट भी सहन करना पड़ा और जागीरें भी छिन गईं। राज सम्मान गया और बात भी गई। स्वामी-द्रोही भी होकर कलंकित हुए। मित्र शत्रु हो गये। दानी थे और फिर स्वयं निर्धन हो गये। भाग्यने पलटा खाया तो कोई अपना न रहा। संसारका कड़ुवा अनुभव हुआ। ऐसे भाव और आत्मानुभव की बातें इनके दोहों में बहुत मिलती हैं और उनसे रहीम पर जो कुछ बीती थी उसका अनुमान सहज में हो जाता है।

साहित्य-सेवा

जिस कारण खानखाना का यश आज भी गाया जाता है और उनकी कीर्ति अमर हो गई है वह उनकी साहित्य-सेवा है। अकबर ने इनकी शिक्षाका बड़ा ही उत्तम प्रबंध किया होगा; क्योंकि केवल एक विद्वान बनने की इच्छा न तो खानखाना की ही रही होगी और न अकबर को यह पसंद हुआ होगा कि रहीम को केवल विद्या से ही प्रेम रहे। आश्चर्य की बात है कि रहीम बड़े सेनापति, राजकार्य में दक्ष, अकबरी दरबार के नामी रत्न होते हुएभी ऐसे अच्छे विद्वान हो सके और संसारके बखेड़ों में लगे रहने पर भी उनका उत्कट विद्या प्रेम बना रहा। ऐसे पुरुष संसारमें थोड़े ही मिलते हैं जिन्होंने कई कार्य-क्षेत्रों में ऐसी सफलता प्राप्त की हो और सदा के लिये अपनी कीर्ति स्थिर कर गये हों। खानखाना की असाधारण प्रतिभा का यह एक बड़ा प्रमाण है।

रहीम ने अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हें इन भाषाओंका केवल साधा-

रण ज्ञान नहीं था, वे इनके साहित्यको अच्छी तरह जानते थे और इन भाषाओंमें कविता भी करते थे । उनका पुस्तकालय प्रख्यात था और विद्वान लोग उनके व्यापक पाण्डित्यकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। संस्कृत साहित्यके अतिरिक्त रहीम ने शास्त्रों और दर्शनों का भी अध्ययन किया था। विद्वानों और कवियों का ऐसा आदर करते थे कि उनसे बढ़कर शायद ही किसीने कियाहो। स्वयं गुणी थे और दानी भी थे तो फिर गुणी जनों को उनसे पूर्ण उत्साह और सहायता मिले इसमें क्या आश्चर्य है ! अनेक कवि उनके आश्रित थे। रहीम यदि स्वयं लेखक वा कवि न होते और कविजनों के आश्रयदाता ही रहे होते तो भी उनका नाम साहित्य-संसारमें सदाके लिए स्मरणीय होजाता। परन्तु उनका सा आश्रयदाता और कवियों के लिए मानप्रद कोई बादशाह भी नहीं हुआ। जितने कवियों ने रहीम की प्रशंसा लिखी है उतने कवियोंने अन्य किसीकी महिमा नहीं गाई। गंग, प्रसिद्ध, मंडन, संत, लक्ष्मीनारायण, वाण आदि अनेक कवि रहीमके आश्रित थे और सब प्रकार से उनके कृतज्ञ भी थे। एक छप्पय पर गंग को रहीम ने ३६ लाख रुपये का इनाम दिया था सो प्रसिद्ध ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी से भी रहीमका घनिष्ठ संबंध था और कविवर मतिराम की कृति पर रहीम की गहरी छाप है। केशवने जहाँगीर-चन्द्रिका रहीमके पुत्र एलच बहादुर के लिए रची थी। तुलसीदासजी का बरवे रामायण रहीम की प्रेरणा का फल है।

अब्दुलबाली नामक ईरानी ने 'मुआसिर रहीमी' नामक जीवनी भी रहीमके जीते जी लिखी थी। 'वाकयात बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी अनुवाद अकबर के कहने से रहीम ने स्वयं किया था और इनाम में जागीर पाई थी। इनका फ़ारसी दीवान अभी मिला नहीं है, परन्तु फुटकर रचना प्रचलित है।

कहते हैं कि यूरोपीय भाषाएं भी रहीम ने सीखी थीं और अकबर के लिए उन भाषाओं में पत्र भी लिख देते थे।

शिवसिंह-सरोज के पृष्ठ ४४४ पर ख़ानख़ाना के अतिरिक्त अन्य और एक रहीम कवि का उल्लेख है और लिखा है कि दास कविने अपने काव्यनिर्णय में इनका नाम एक कवित्त में दिया है। वह कवित्त इस प्रकार है—

सूर केशव मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिन्तामणि मतिराम भूषण सो जानिये।
नीलकंठ नीलाधर निपट नेवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देब मानिये॥
आलम रहीम खानखाना रसलीन बली,
सुन्दर अनेक गन गनती बखानिये।
ब्रजभाषा हेत ब्रज सब कीन अनुमान,
येते येते कविन की बानी हूते जानिये॥

इस कवित्त से दो रहीम होने का अनुमान करना ठीक नहीं है। शिवसिंहजी के आधार पर मिश्रबन्धुविनोद में भी दो रहीम माने गये हैं।

'रहीम खानखाना' नाम एकही व्यक्ति को सूचित करता है न कि दो को। इसके अतिरिक्त काव्य-प्रयोजन के वर्णन में दास कविने लिखा है—

"एकन को रस ही को प्रयोजन है रसखान रहीम की नाई"

यह उक्ति भी ख़ानख़ाना के अतिरिक्त किसी अन्य रहीम के लिए नहीं हो सकती। इस अन्य अनुमानित रहीम का एक ही पद्य शिवसिंह सरोज के पृष्ठ २५ पर दिया गया है। परन्तु वह पद्य रहीम का नहीं है, अनीस कवि का है। और उसी ग्रंथ के ११ वें पृष्ठ पर अनीस के नाम से दिया भी गया है। अतएव अब्दुर्रहीम के अतिरिक्त अन्य किसी रहीम का अनुमान

करना भ्रान्ति पूर्ण है। हिन्दी साहित्य में एकही रहीम हैं और वे ख़ांनख़ाना थे।

हिन्दी काव्य

रहीमने हिन्दी भाषा को अपना कर अपनी कृति से उसके साहित्य की जैसी अतुल सेवा की है वैसी और किसी भाषा की नहीं की। रहीम कृत फ़ारसी दीवान का पता नहीं चलता उस पर भी यह मान लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए कि हिन्दी के लिये जो रहीम ने किया और जैसा ममत्व इस भाषा पर दिखाया वैसा और किसी भाषा पर नहीं दिखाया। अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं से किसी प्रकार हिन्दी का महत्त्व रहीम को कम नहीं दिखाई दिया। उसके माधुर्य पर मानों वे मुग्ध थे। केवल भाषा पर ही उनका अधिकार नहीं था, वे हिन्दू सभ्यता और हिन्दू धर्म को भी भली प्रकार समझ गये थे और उनके लिये रहीम को बड़ा आदर रहा होगा। कविता में कहीं एक शब्द हिन्दू समाज वा हिन्दू धर्म के विरुद्ध नहीं मिलता। उनके देवता तथा धार्मिक विचारों का उल्लेख मिलता है, परन्तु कहीं तिरस्कार बुद्धि से नहीं। यह बात बड़े महत्त्व की है। अवतारों के नाम, महादेवजी, गंगाजी की महिमा आदि से स्पष्ट प्रतीत होता है कि रहीम का भाव हिन्दुओं के प्रति घृणा का नहीं था। हिन्दू धर्म के प्रति अतुल श्रद्धा थी और वैष्णव धर्म के अनुयायी तथा श्रीकृष्ण के वे भक्त थे—ऐसा लिखा भी मिलता है परन्तु इसके लिये कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। यह बात बिना संकोच के मानी जा सकती है कि हिन्दी के मुसलमान कवियों और लेखकों में तो रहीम का स्थान बहुत ऊँचा है ही और समस्त

कवियों में भी यदि उनकी गणना साहित्य के नवरत्नों में नहीं है तो चतुर्दश रत्नों में अवश्य है।

रहीम केवल मनोरंजन के लिये कविता रचते थे और इस में वे अवश्य ही सफल मनोरथ हुए हैं। रहीम के दोहे बालकों को भी याद हैं। उनकी कविता सरस, मधुर और नीति-पूर्ण है। साधारण बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। भाषा प्रायः ब्रज की है और कहीं अवधी या दोनों का मिश्रण है। भाव या भाषा में बनावट या खैंचातानी कहीं नहीं है सहज स्वाभाविकता है। जनसाधारण में जैसी कविता का आदर होता है उसके गुण इनके काव्य में हैं। समय की रुचि का पता इनकी कविता से चलता है। कुछ कविता इनकी ऐसी है जो सबको सदा ही पसन्द आवेगी। रहीम को संसार का बड़ा अनुभव प्राप्त था। यह बात नीति की बातों से स्पष्ट है। शृंगार रस का प्राधान्य है, यह समय की रुचिके अनुसार है। कहीं मृदुहास्य की झलक भी दिखाई देती है तो कहीं संतप्त हृदय के उद्गार भी हैं, वाक्य में रस तो हैं परन्तु अर्थ गौरव और भावों की गहनता का अभाव सा है। उदाहरण बड़े ऊँचे हुए हैं और हिन्दू-विचारों की पूरी जान-कारी के साक्षी हैं। समस्त जीवन तो रहीम ने युद्धक्षेत्र में बिताया परन्तु वीर रस की कोई कविता नहीं रची। दूसरी बात आश्चर्य की यह भी है कि किसी भी ऐतिहासिक घटना का वर्णन वा उल्लेख इन्होंने नहीं किया। अपनी परिवर्तित दशा और संसार के कड़ुवे अनुभव तो व्यक्त किये हैं परन्तु किसी घटना विशेष का हवाला नहीं दिया।

ऐसा जान पड़ता है कि मन में तरंग उठी तो कुछ लिख देते थे। कल्पना वा विचार पर परिश्रम की छाप नहीं दिखाई देती। कविता को सुन्दर वा गम्भीर बनाने का कुछ प्रयास

किया हो ऐसा भी नहीं जान पड़ता। परन्तु प्रतिभा और कवित्व शक्ति अच्छी थी इसमें कोई सन्देह नहीं और भाषा पर जो प्रशंसनीय अधिकार प्राप्त था।

रहीम-रचित ग्रंथ

१ दोहावली—ऐसा कहा जाता है कि रहीम ने एक पूरी सतसई लिखी थी। परन्तु उसका पता अभी तक हिन्दी संसार को नहीं चला है। इसीलिए कोई पूर्ण संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। जितने प्रकाशित और अप्रकाशित दोहे हम को मिले हैं वे सब इस पुस्तक में संग्रहीत हैं। सतसई का इतना ही भाग अभी तक प्राप्त समझना चाहिए। कई हस्त लिखित पुस्तकों में से फुटकर दोहे मिले हैं और पाठ भी मिले हैं। फिर भी कई दोहे संदिग्ध हैं। कुछ दोहों का पाठ ठीक नहीं है और अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। जबतक खोज में किसी को और अधिक सामग्री न मिले इन संदिग्ध दोहों का पाठ शुद्ध न हो सकेगा। कुछ दोहे ऐसे भी मिले हैं जो रहीम के कहे जाते हैं परन्तु वे अन्य कवियों के लिखे हुए हैं। इस प्रकार के दोहे टिप्पणी में सूचित कर दिये गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनमें रहीम का नाम नहीं आता और थोड़े ऐसे भी हैं जो रहीम और किसी अन्य कवि दोनों के नाम से मिलते हैं। हमने सतसई की खोज का बड़ा प्रयत्न किया परन्तु यह निष्फल हुआ है। जो नये दोहे मिले हैं उन्हीं से सन्तोष करना पड़ता है।

संदिग्ध दोहों के संबन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। रहीम तथा कबीर के संबंध में प्रायः इस प्रकार की गड़बड़ी विशेष रूप से मिलती है। 'दोहासार संग्रह' तथा 'गुणगंजनामा' नामक दोहों के दो प्राचीन संग्रह हमारे पुस्तकालय में हैं। दोहासार-संग्रह तो सं० १७२० के लगभग

रचा गया था और गुणगंजनामा के विषय में कुछ बात नहीं। इन संग्रह ग्रंथों में भी कुछ दोहे दिये गये हैं जिनमें या तो रहीम का नाम नहीं है अथवा अन्य किसी कवि का नाम दे दिया है। हमने इस प्रकार की गड़बड़ी की सूचना प्रायः टिप्पणी में दे दी है। 'रहीम-रत्नावली' में दिये हुए हम प्रत्येक दोहे को रहीम रचित प्रमाणित नहीं कर सकते। परन्तु जब ये दोहे रहीम के नाम से प्रसिद्ध ही है तो जबतक उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता तबतक रहीम रचित ही मानने चाहियें। प्रायः रहीम रचित दोहों में 'रहीम' अथवा 'रहिमन' उपनाम दिया गया है परन्तु निम्नाङ्कित १४ दोहों में कोई उपनाम नहीं है।१, २१ २२, ४६, ६७, ६६, ८३, ६४. १००, ११४, १३२, १४३, १४८, २४३। इन 'रहीम' उपनाम-रहित दोहों के संबंध में संदिग्धता हो सकती है। एक दो 'रहिमन शतक' नामक ग्रंथों में रहीम नाम से निम्न लिखित दो दोहे और मिलते हैं।

कहु रहीम उत जायके, गिरिधारी सों टेरि।
अब दृग जल भर राधिका, ब्रजहिं डुबावत फेरि।
प्रिय वियोग ते दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिरि मिलन, तोरि सिधाये कंत॥

पहिला दोहा रहीम-कवितावली में भी दिया है। परन्तु यह दोहा विहारी के नाम से प्राचीन प्रतियों में मिलता है। दूसरे के संबंध में शंका है, कारण किसी विश्वस्त हस्त-लिखित अथवा छपी प्रति में यह दोहा नहीं है।

देत देत सब दीन, एक न दीनों दुसह दुख।
सोऊ मरिके दीन, कछु न राख्यो देनको॥

कहाजाता है कि उपर्युक्त सोरठा अकबर ने बीरबल की मृत्यु पर कहा था। परन्तु ज्ञानभास्करप्रेस (बाराबंकी) से प्रकाशित रहिमन शतक में इसे रहीम रचित कहा गया है।

नंबर १८ तथा ६२ वाले दोहों का उत्तरार्ध एक ही है परन्तु पूर्वार्ध में कुछ भेद होने के कारण अर्थान्तर हो गया है, इस कारण दो पृथक दोहे माने गये हैं। इसी प्रकार नं० ६८ और १०६ में विशेष अर्थान्तर तो नहीं है, परन्तु पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध की गड़बड़ी से दो रूप हो गये हैं। दोनों ही पाठ ठीक हो सकते हैं, इस कारण दोनों ही दोहे दिये गये हैं। रहीम-रचित दोहों का कोई क्रम नहीं है। उनका क्रम विषयानुसार किया जा सकता था, परन्तु हमें अकारादि क्रम अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, इस कारण इसी क्रम से दोहे दिये गये हैं। पाठकों को भी यह क्रम सुगमतर प्रतीत होगा।

प्राप्त दोहों में शृंगार के दोहे बहुत कम हैं। संभव है कि रहीम-रचित सतसई में से किसी ने शृंगार के दोहे निकाल कर नीति आदि के दोहों का एक छोटा सा संग्रह किया हो, और अब वही संग्रह प्राप्त है और शृंगार का भाग लुप्त हो, गया हो। रहीम ने सतसई न लिखी हो इस प्रकार का अनुमान करना वृथा प्रतीत होता है। यद्यपि हमें सतसई की खोज में सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि हमारा यह विश्वास नहीं कि रहीम ने सतसई लिखी ही नहीं। रहीम ने अपने ७२ वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में यदि सतसई के सात सौ दोहे लिखे हों तो आश्चर्य ही क्या है?

इस समय जो दोहे रहीम के प्राप्त हैं वे या तो केवल नीति-विषयक दोहों का संग्रह ही है अथवा जिन दोहों में रहीम उपनाम है वही अब रहीम के गिने जाते हैं। और बाकी ५०० दोहे अन्य कवियों के माने जाने लगे हैं।

रहीम का विशेष समय ऐसे झंझटों में बीता था कि वे या तो छोटे ग्रन्थ या दोहे, सोरठे ही सुगमता से लिख सकते थे।

मन में कोई तरंग उठी, भाव आया, तुरन्त दोहे वा सोरठे में व्यक्त कर दिया।

नीति और शिक्षा के दोहे प्रायः रचयिता के अनुभव के साक्षी हैं। कहीं कहीं भाव-भाषा गठे हुए नहीं हैं, परन्तु वे कवि के सच्चे भाव हैं इसमें सन्देह नहीं होता। रहीम के बाद दोहा हिन्दी काव्य-साहित्य का अमूल्य रत्न बन गया था और उसमें कोमल भावों की बारीकियां व्यक्त करने की शक्ति भी अधिक आ गई थी। इस छन्द को लोकप्रिय बनाने में रहीम को बड़ा श्रेय प्राप्त है। कहावत के रूप में बहुत दोहे अब भी लोगों की जिह्वा पर आते हैं। दो चार बड़े कवियों को छोड़कर किसी के वाक्य बोलचाल में इतने प्रचलित नहीं हैं, जितने रहीम के हैं। नीति के दोहे बहुत से कवियों ने कहे हैं परन्तु अपने आन्तरिक भावों तथा अनुभवों को जी खोलकर रहीम की तरह थोड़े ही कवि कह सके हैं। उपदेश की बातें कहने में कोई नवीनता वा मौलिकता नहीं हुआ करती, अपना अनुभव ही उनको सजीव बनाता है; और यही रहीम की विशेषता है। पिंगल की कसौटी से तो शायद दो चार दोहे ही ठीक उतरें, परन्तु "दोग्धि चित्तमिति दोहा" अर्थात् जो चित्त को दुहता है वह दोहा है-इस लक्षण को अपनाया जाय तो प्रत्येक दोहा वास्तव में दोहा है। उत्तम छन्दों को चुनकर यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक प्रतीत होता है और मिश्रबन्धु महोदयों की सम्मति के अनुसार तो उत्तम छन्दों के उदाहरण में इनका पूरा ग्रन्थ ही रक्खा जा सकता है।

२ नगर शोभा-कुछ काल हुआ जब यह हस्तलिखित पुस्तक खोज में हमको मिली थी। इसकी सूचना 'माधुरी' (फाल्गुन-पूर्ण संख्या ५२) में हमने प्रकाशित की थी। पुस्तक

में लिखने का समय नहीं दिया है, किन्तु इसके प्राचीन होने में कोई सन्देह नहीं है। इसके प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होने पर भी कविता की भाषा, उसकी प्रौढ़ता और भाव देखने से यह ग्रन्थ रहीम का ही जान पड़ता है। 'शृंगार-सोरठा' की भाषा से इसकी भाषा मिलती भी है। सब से विश्वस्त प्रमाण यह है कि पुस्तक के आदि में लिखा है।

"अथ नगरशोभा नवाब खानखाना-कृत"।

इसमें १४२ दोहे हैं। आरम्भ में मंगलाचरण दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। रहीम-सतसई का अंश नहीं है। महाकवि देवजीने 'जाति-विलास' में जिस रीति से बहुत सी जातियों की तथा देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, उसी रीति से 'नगरशोभा' में भी अनेक जातियों की स्त्रियों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया गया है। भाव शृंगार का है। दोहे की शब्द-योजना से वर्णित स्त्री की जाति तथा कर्म या मनोहर चित्र नेत्रों के सम्मुख आजाता है। यह ग्रन्थ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है। यह अनुमान किया जा सकता है कि देवजी ने 'जाति-विलास' कदाचित् रहीम के इस ग्रन्थ को देखकर बनाया हो और रहीम को इस ग्रन्थ की रचना अकबर के मीनाबाज़ार से सूझी हो।

इसी प्रकार के एक ग्रन्थ का अंश और भी मिलता है और वह बरवा छन्द में है। बरवा रहीम को विशेष प्रिय था। संभव है कि दोहा छन्द में लिखने के पश्चात् बरवा छन्द में भी "नगरशोभा वर्णन" लिखने के विचार से ये बरवे लिखे हों। इन बरवां की रहीम की कविता से तुलना भी करने योग्य है। 'नगरशोभा वर्णन' में जिस भाव से ब्राह्मणी और तुरकनी का वर्णन किया गया है वैसे ही

भाव इन बरवे में ब्राह्मणी और तुरकनी के वर्णन में पाए जाते हैं। जैसे नगरशोभा-वर्णन में प्रत्येक जाति की स्त्री का वर्णन करने में उस जाति से संबंध रखनेवाला कोई न कोई शब्द लाने का प्रयत्न किया गया है, वैसा ही प्रयत्न इन बरवे के रचयिता ने किया मालूम होता है। यह बात तो निश्चित रीति से कही जा सकती है कि इनका रचयिता मुसलमान था। अधिक संभव यह ही है कि ये बरवे भी रहीम कृत ही हों, परन्तु निश्चित रीति से नहीं कहा जा सकता। इसी लिये उन को यहाँ उद्धृत करते हैं कि खोज करनेवालों को पता लगे तो ग्रन्थकर्त्ता का पता चल सके।

ऊँच जाति ब्राह्मणियाँ, बरणि न जाय।
दौरि दौरि पालागी, शीश छुआय ॥ १ ॥

बड़ि बड़ि आँखि बरनियाँ, हिय हरिलेत।
पतरी के अस डोब, करजवा देत ॥ २ ॥

घाट बाँट लै बानिनि, हाट बईठ।
कहत काहु नहिं जानी, बतियन मीठ ॥ ३ ॥

नीक जाति कुरमी की, खुरपी हाथ।
आपन खेत निरारै, पी के साथ ॥ ४ ॥

अहिरिनि मनकी गहिरी, उतर न देय।
नैना करे मथनियाँ, मनमथ लेय ॥ ५ ॥

हलुवा जस हलवनियाँ, गलवा लाल।
लाल लाल है जुबना, नैन रसाल ॥ ६ ॥

टेढ़ माँग नाइन की, नहरन हाथ।
फिर पाछे जो हेरै, महतौ साथ ॥ ७ ॥

चीकन गात तेलनियाँ, बरनि न जाय।
चितवत रूप अनूपम, चित लपटाय ॥ ८ ॥

मैली एक धोबनियाँ, ऊजर गाँव ।
भूलि कन्त बिन कलपति, लैं लैं नाँव ॥ ९ ॥
झमक चली कसइनयाँ, दै दै सैन ।
धरे करेजवा छुरिया, करि करि पैन ॥ १० ॥
नीक जाति तुरकिन की, बहुतै लाज ।
जाने पिय की सेवा, और न काज ॥ ११ ॥
सुन्दरि तरुणि तमोलिनि. तरवन कान ।
हेरै हँसे हरे मन, फेरै पान ॥ १२ ॥
भरभूजिन कन भूजहि, बेठि दुकान ।
फुटका करति बिहँसि के, बिरही प्रान ॥ १३ ॥
कलवारी मदमाती, काम कलोल ।
भरि भरि देय पियलवा, महा ठठोल ॥ १४ ॥
परदवार तन नाजुक, कैथिन नारि ।
शंक धरे घूँघट दृग, चली निहारि ॥ १५ ॥
अचरज करत लुहरिया, पिय के पास ।
जाहि छुवत बिन जिय के, लेय उसास ॥ १६ ॥

३ बरवे नायिकाभेद—रहीम का यह ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राप्त है और है भी अति प्रसिद्ध । जैसा कि अन्यत्र लिखा है, रहीम के मुंशी की स्त्री ने एक बरवे उनके पास भेजा था और संभवतः तभी से यह छन्द रहीम को विशेष प्रिय होगया, और नायिकाभेद लिखने को इसी छन्द को पसन्द किया । रहीम को बरवे के लिए जो आग्रह था वह निम्नलिखित दोहे से प्रकट है ।

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छन्द ।
विरच्यो यहै विचार के, यह बरवै रसकंद ॥

रहीम ने इस छन्द के लिखने में विशेष कौशल भी दिखलाया

है। तुलसीदासजी ने 'बरवे रामायण' रहीम के बरवे देख कर लिखी है। यह भी कहाजाता है कि रहीम ने गोस्वामीजी से कह कर 'बरवे रामायण' की रचना कराई है। बाबा वेणीमाधव-रचित गुसाईंचरित्र में इस बात का प्रमाण भी मिलता है। यथा—

कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुन्दर छन्द में, रचना कियेउ प्रकास॥

जैसे सूर के पद, बिहारी के दोहे, तुलसी की चौपाई, साहित्य में अपना अपना विशेष स्थान रखते हैं, उसी प्रकार रहीम के बरवे भी हिन्दी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। यह शुद्ध अवधी भाषा में लिखे गए हैं। अवधी में ही बरवे लिखा जासकता है, ब्रजभाषा में इसकी रचना नहीं होती। यह दोहे से भी छोटा छन्द, परन्तु बड़ा मधुर और चमत्कारी है। नायक और नायिका के सरल उदाहरण दिये गए हैं। उदाहरण बड़े ही मनोहर हैं और रहीम की कवित्व-शक्ति के सब से उत्तम प्रमाण हैं। एक भी बरवे शिथिल नहीं है। साहित्य में यह छोटा सा ग्रन्थ विशेष आदर पाने योग्य है। महाकवि केशवदास ने रसिकप्रिया संवत् १६४८ वि० में रची थी। कहा नहीं जा सकता कि रहीम का 'बरवे नायिकाभेद' उससे पहिले रचा गया था या पीछे। परन्तु हिन्दी के नायिका-भेद विषयक ग्रन्थों में यह ग्रन्थ भी आदिग्रन्थों में से कहा जा सकता है।

हमको खोज में एक ग्रन्थ मिला जिसमें रहीम के बरवे के साथ मतिराम के दोहे भी दिये गये हैं। पं० कृष्णबिहारी मिश्रजी के पास भी एक इसी प्रकार की प्रति है। इन प्रतियों में नायक-नायिका के लक्षण तो मतिराम के दोहों में दिए गए हैं और उदाहरण रहीम के बरवे हैं।

महाराज काशिराज के पुस्तकालय में भी एक पुस्तक है, जिसमें मतिराम के दोहे और रहीम के बरवे साथ मिलाकर लिखे हुए हैं। इस प्रति के अन्त में निम्नलिखित दोहा है—

लक्षण दोहा जानिये, उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भए, रस सिंगार निर्मान॥

सम्भव है कि मतिराम ने स्वयं संग्रह किया हो। थोड़े समय के लिए मतिराम और रहीम समकालीन भी थे और मतिराम के काव्य पर रहीम का पूर्ण प्रभाव भी पड़ा है। इन दोनों कवियों में भाव-सादृश्य के अनेक उदाहरण मिले भी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मतिराम की कविता रहीम की ऋणी है। इस संग्रह में दोहे मतिराम-कृत 'रसराज' के हैं। लक्षण और उदाहरण दोनों के संग्रह से ग्रन्थ भी सम्पूर्ण हो गया और रहीम की कृति भी चमक उठी है। इसीलिए मूल में मतिराम के दोहे भी छोटे अक्षरों में देदिये हैं। 'रहीम-रत्नावली' में दिया हुआ मुग्धा के उदाहरण का ५ वें नंबर का बरवा उक्त प्रतियों में नहीं है, किन्तु शिवसिंहसरोज तथा अन्य सभी मुद्रित पुस्तकों में इसे रहीम-रचित माना है।

४ बरवे—यह भी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक हमको खोज में मिली है। यह प्रति बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है और प्रत्येक पृष्ठ के हाँशिये पर फारसी चित्रकला के अनुसार बेल-बूटे बने हुए हैं। रहीम का मातामह जमालखाँ मेवाती था और यह प्रति भी मेवात में ही मिली है।

आदि में मंगलाचरण के ६ छंद हैं जिससे यह एक स्वतंत्र ग्रंथ प्रमाणित होता है। किसी अन्य ग्रंथ का भाग नहीं है। नायिकाभेद में ११५ बरवे हैं, और इसमें १०१ हैं।

परन्तु इन बरवों में कोई क्रम नहीं है। विषय विशेष कर शृंगार रस का है। बीच-बीच में भक्ति ज्ञान वैराग्य पर भी छंद आजाते हैं। अंत में ग्रंथ-समाप्ति-विषयक कोई छंद नहीं दिया है और न संवत ही लिखा है। चार बरवे फ़ारसी भाषा के हैं।

इस ग्रंथ की भाषा नायिकाभेद से अधिक प्रौढ़ है। इससे अनुमान होता है कि यह ग्रंथ नायिकाभेद के पश्चात् की कृति है। भाषा और काव्य-चमत्कार में भी यह ग्रंथ अन्य रहीम की रचनाओं से न्यून नहीं है। आरम्भ के मंगलाचरण-संबंधी छंदों में तथा गो० तुलसीदासजी की रामायण के मंगलाचरण के सोरठों में बहुत कुछ भावसाम्य है। दोनों में मित्रता भी खूब थी। गोस्वामीजी ने 'बरवे रामायण' रहीम के भेजे हुए बरवों को देखकर रची है ×। अनुमानतः रहीमने रामचरितमानस के सोरठों से ही भाव लेकर ये बरवे रच कर गोस्वामी जी की सेवा में भेजे होंगे, जिससे रहीम की गोस्वामीजी पर प्रगाढ़ भक्ति प्रकट हो जाय और तुलसीदासजी का ध्यान इस ओर आकर्षित हो कि इस सुन्दर छंद में भी रामकथा वर्णित की जाय तो लोकोपकार हो।

इस ग्रंथ के अंत के पिछले चार बरवे अन्य फुटकर संग्रहों से एकत्रित किये गये हैं। ये बरवे भी रहीम-रचित सुने जाते हैं।

१. पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव।
पैंया परौं नँनदिया, फेरि कहाव॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत कविताकौमुदी

× कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुंदर छंदमें, रचना कियेउ प्रकास॥

—बाबू बेणीदास-कृत मूल गुँसाईंचरित्र।

२–या झर में घर घर में, मदन हिलोर ।
पिय नहिं अपने कर में, करमें खोर ॥

––नवीन कृत प्रबोधरससुधासागर

३–बालम अस मन मिलयउँ, जस पय पानि ।
हंसनि भयल सवतिया, लइ बिलगानि ॥

––रहिमनविलास तथा अन्य ग्रंथ +

४–ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय ।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥

––नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित नायिकाभेद*

इन चार छंदों के अतिरिक्त एक बहुतही उत्कृष्ट बरवा भी रहीम कृत प्रसिद्ध है । पं० नकछेदी तिवारी ने अपने संपादित मनोजमंजरी में इसे रहीम-रचित बताया है और उन्होंने इसे स्वसंपादित रहीम कृत नायिकाभेद तथा सेवक-राम-कृत नखशिख के मुख पृष्ठ पर दिया है। वह इस प्रकार है–

नयना मति रे रसना, निज गुन लीन ।
कर तू पिय झिझकारे, भली न कीन ॥

यह बरवे भी रहीम-रचित ही है । इसका एक प्रमाण यह भी है कि संत कविने, जो रहीम का ही आश्रित था, इस बरवे के भाव को एक सवैया में व्यक्त किया है । वास्तव में

+ पं० नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित नायिकाभेद में यह नहीं दिया है और शिवसिंहजीने इसे यशोदानंदन कृत लिखा है। नायिकाभेद की हमारी हस्तलिखित पुस्तक में भी यह छंद नहीं है ।

* हमारी हस्तलिखित पुस्तक में यह छंद नहीं है और न यह छंद काशीनरेश की प्रति तथा असनी से प्राप्त मिश्रजी की प्रति में है । किन्तु मिश्रबंधु–विनोद तथा अन्य अनेक मुद्रित पुस्तकों में यह मध्या के उदाहरण में दिया है ।

तो यह सवैया इस बरवै की टीका है :-

पीसों झुकी रसना बिन काज लखैं गुन नाम सयान तिहारे ।
नयना चले अति रूखे रहें तुम ताही ते नाम ए जानत धारे ॥
'संत' विरुद्ध चल्यो अति ही जिहिते दुख नैकु टरै नहिं टारे ।
पाय सुलच्छन नाम अरे कर काहे को नंदलला फटकारे ॥

५ मदनाष्टक—रहीम ने इस अष्टक की रचना संस्कृत कवियों की चाल पर मालिनी छंद में की है । भाषा रेखता तथा संस्कृत मिश्रित है । ऐसी मिश्रित कविता रहीम के बहुत पहिले से होती चली आई थी । संवत् १४०० के लगभग शारङ्गधरने अपनी 'शारङ्गधर पद्धति' में श्रीकण्ठ का निम्नलिखित छंद दिया है—

नूनं बादल छाइ खेह पसरी निःश्राणशब्दः खरः ।
शत्रुं पाडि लुटालि तोडि हनिसौं एवं भणन्त्युद्भटाः ॥
झूठे गर्व भरामघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे ।
कण्ठे पाग निवेश जाह शरणं श्रीमल्लदेवमं प्रभुम् ॥

संवत् १३८२ से पूर्व अमीर खुसरोने फ़ारसी हिन्दी मिश्रित कविता लिखी थी । और वह प्रसिद्ध भी है । केदारभट्ट-रचित "वृत्त रत्नाकर" संस्कृत का एक ग्रंथ है । उसकी संस्कृत टीका नारायण भट्ट ने संवत् १६०२ में लिखी थी । उसमें निम्न-लिखित छंद मिश्रित काव्य के उदाहरण में दिया है—

हरनयन समुत्थः ज्वाल वन्हि जलाया ।
रति नयन जलौघैः खाक वाकी बहाया ॥
तदपि दहति चेतो मामकं क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

ऐसे मिश्रित काव्य करने की प्रथा रहीम से कई वर्ष पहिले प्रचलित थी । और रहीम ने भी इसी प्रकार की रचना

की है। रहीम के आश्रित रहनेवाले गंग कवि के भी मिश्रित भाषा के कुछ छंद हमारे पास हैं। रहीम के इस प्रकार के ८ छंद तो 'मदनाष्टक' में हैं और २ छंद 'रहीम-काव्य' में हैं। इसके अतिरिक्त 'खेटकौतुक' नामक रहीम का ज्योतिष ग्रंथ भी मिश्रित भाषा में रचा गया है। मदनाष्टक में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है और ये खड़ी बोली के प्राचीन रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस समय हिन्दी-संसार के सम्मुख तीन मदनाष्टक हैं जिनमें प्रत्येक रहीम रचित कहा जाता है। ये तीन मद-नाष्टक ये हैं।

१ सम्मेलन-पत्रिका (भाद्रपद, संवत १६७६) में प्रकाशित

२ असनी से प्राप्त

३ काशी-नागरीप्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशित

इन तीनों मदनाष्टक में रहीमकृत कौनसा है, इसमें मतभेद है। नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रहीम-कवितावली में तो नागरीप्रचारिणी-पत्रिका वाला मदनाष्टक रहीम-रचित माना है। वास्तव में निश्चित रूप से कोई बात कहना कठिन है। हमने तो सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित मदनाष्टक को ही रहीम-रचित मानकर रहीमरत्नावली में स्थान दिया है। इसके निम्नलिखित कारण है :—

१—शिवसिंह सरोज जैसी प्राचीन संग्रह-पुस्तक में तथा मिश्रबंधुविनोद में मदनाष्टक का जो छंद उदाहरण में दिया गया है वह नागरीप्रचारिणी-पत्रिका वाले में नहीं है।

२—असनी तथा नागरीप्रचारिणी-पत्रिकावाले अष्टकों के प्रथम छंद विचारणीय हैं। ये दोनों छंद नायक की उक्तियां हैं, परन्तु बाकी के सात छंदों में नायिका की उक्तियाँ हैं। परन्तु सम्मे-

लन-पत्रिका के अष्टक के आठो छंद नायिका की ही उक्तियाँ हैं। इससे भाव का क्रम गठा हुआ प्रतीत होता है।

३—नागरीप्रचारिणी पत्रिकावाले अष्टक का तीसरा छंद तथा असनी वाले का सातवां छंद (हरनयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया) कुछ साधारण पाठान्तर के साथ केदारभट्ट विरचित वृत्तारत्नाकर की नारायण भट्ट की टीका में दिया है। यह टीका रहीम के जन्म से भी ११ वर्ष पूर्व रची गई थी। इस कारण यह छंद रहीम का नहीं हो सकता।

वास्तव में निश्चित रीति से तो कुछ नहीं कहा जासकता। संभव है कि नारायण भट्ट की टीका में कथित छंद को देखकर रहीमने 'मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी' को समस्या मानकर पूर्ति की हो और यह भी संभव है कि ये सभी छंद रहीम-रचित ही हों और जिसे जो छंद मिले उन्हें एकत्र कर अष्टक का रूप दे दिया।

हमने अन्य अष्टकों की अपेक्षा सम्मेलन-पत्रिका वाले अष्टक को ऊपर लिखित कारणों से रहीम-रचित मानकर मूल पुस्तक में स्थान दिया है, किन्तु साहित्यिक खोज करनेवालों के सुभीते के लिये असनी से प्राप्त तथा नागरीप्रचारिणी पत्रिका वाले मदनाष्टक भी यहां उद्धृत करते हैं :—

असनी से प्राप्त--

(१)

दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग़ में।
काचित् तत्र कुरंगशावनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर॥

(२)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला ।
अलि बनि अलबेला यार मेरा अकेला ॥

(३)

अकल कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फैं ।
अलि-कलित निहारैं आपने दिलकी कुल्फैं ॥
सकल शशि-कलाको रोशनीहीन लेखौं ।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं ॥

(४)

वहति मरुति मन्दम् मैं उठी रात जागी ।
शशिकर कर लागे सेज को छोड़ भागी ॥
अहह विगत स्वामी मैं करूं क्या अकेली ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(५)

छबि छकित छबीली छैलरा की छड़ी थी ।
मणि जटित रसीली माधुरी मुंदरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा ।
कहि सकत न जैसा कान्ह का हस्त देखा ॥

(६)

विगत वन निशीथे चांदकी रोशनाई ।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥
सुतपति गत निद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(७)

हर-नयन हुताशन ज्वालया भस्मिभूत ।
रतिनयन जलौघे खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तं मामकम् क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(८)

हिमरितु रतिधामा सेज लोटौं अकेली ।
उठत विरह ज्वाला क्यौं सहौंरी सहेली ॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

काशीनागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित और 'रहीम कवितावली में दिया हुआ अष्टक इस प्रकार है—

(१)

मबसि मम नितान्तम आयकैं बासु कीया ।
तन धन सब मेरा मान तैं छीन लीया ॥
अति चतुर मृगाक्षी देखतैं मौन भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(२)

वहत मरुति मन्दम् मैं उठी राति जागी ।
शशि-कर कर लागें सेल ते चैन बागी † ।
अहह बिगत स्वामी क्या करौं मैं अभागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(३)

हर-नयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया ।
रति-नयन जलौघै खाख बाकी बहाया ॥

---

† शशि-कर कर लागे सेजको छोड़ भागी ।

तदपि दहति चित्तम् मामकम् क्या करौंगी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(४)

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन बन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई ॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियां छोड़ भागीं ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(५)

हिम ऋतु रतियामा सेज लोटौं अकेली ।
उठत विरह-ज्वाला क्यों सहौं री सहेली ॥
चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(६)

कमल मुकुलमध्ये रातिको ए सयानो ।
लखि मधुकर बंधम् तू भईरी दिवानी ॥
तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(७)

तव बदन मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी ।
मुख छबि लखि भू वै चाँदते कांति गाढ़ी ॥
जलज-मथित रंभा देखतै मोहि भागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(८)

नभसि घन घनान्ते है बनी कैसि छाया ।
पथिक जन बधूनाम् जन्म केता गँवाया ॥
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

असनी के अष्टक के २, ३, ५, ६ नंबर के छंद तथा ना० प्र० पत्रिका के चौथा छंद सम्मेलन-पत्रिका के मदनाष्टक से मिलते हैं। भाव का यदि कोई क्रम नहीं है तो इससे कोई हानि नहीं होती। क्योंकि यह कोई प्रबंध काव्य नहीं है। एक एक छंद यदि पूरा भाव प्रदर्शित करता है, तो कवि को सन्तोष हो गया होगा। यह अष्टक भी मन की तरंग में ही लिखा गया है। संभव है कि आरम्भकाल की कविता हो।

६ फुटकर पद—ऐसा कहा जाता है कि रासपञ्चाध्यायी नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ रहीम ने रचा था। परन्तु वह प्राप्त नहीं है। दो पद भक्तमाल में दिये हुए हैं। उनके साथ एक प्रसंग भी है, जो किंवदन्तियों में दिया गया है। खोज में जो पाठ-भेद मिला है वह भी एक पुस्तक में सूचित करते हैं। खोज में हमें जो और छंद मिले हैं वे भी यहाँ सम्मिलित कर दिये हैं। अजमेर से प्रकाशित ठाकुर भूरिसिंहजी शेखावत रचित 'विविध संग्रह' में रहीम का एक छप्पय दिया है, उसमें रहीम के एक श्लोक का ही भाव है, उसे 'रहीमकाव्य' के उस श्लोक के साथ ही दिया है।

७ शृंगार सोरठा—यह भी अधूरा ग्रंथ है। इसके एक स्वतंत्र ग्रंथ होने का केवल यही प्रमाण है कि नाम प्रचलित है। संभव है कि सतसई का यह एक भाग हो। कुछ निश्चय नहीं कहा जा सकता। जो सोरठे प्राप्त हैं, बड़े ही भाव-पूर्ण हैं। दोहों में जो कहीं—कहीं शिकायत है, वह इनमें नहीं है। परन्तु है कितने थोड़े!

८ रहीम-काव्य—यह संस्कृत और हिन्दी मिश्रित श्लोकों का संग्रह है। पूरी पुस्तक नहीं देखने में आई है। इन श्लोकों का कोई क्रम नहीं है। हिन्दू और मुसलमान जातियों के तत्का-

लीन मेल का साहित्यिक रूप इस ग्रंथ में मौजूद हैं। उक्तियाँ अच्छी हैं और संस्कृत शुद्ध है। रहीम का अधिकार संस्कृत पर कैसा था वह इन श्लोकों से स्पष्ट है। प्रथम श्लोक का भाव रहीम ने हिन्दी में एक छप्पय में भी व्यक्त किया है। उसे हमने फुटकर पद में न देकर इस श्लोक के साथ पाद-टिप्पणी में दिया है।

९ खेट कौतुकम्—यह ग्रंथ भी फ़ारसी और संस्कृत दो भाषाओं की खिचड़ी है। ग्रंथ सम्पूर्ण प्राप्त है और वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित भी हो चुका है। ज्योतिष का ग्रंथ है, साहित्य का नहीं। इसीलिये मूल पुस्तक में इसको स्थान न देकर नीचे दो एक उदाहरण देकर सन्तोष किया है। ग्रहों के फल इसमें दिये गये हैं और अन्त में राजयोग पर एक अध्याय दिया है। मंगलाचरण के श्लोक के पश्चात् रहीम कहते हैं—

फ़ारसी पद मिश्रित ग्रंथाः खलु पण्डितैः कृता पूर्वैः।
संप्राप्यतत्पदपथं करवाणि खेटकौतुकं पद्यम्॥

इसी तरह के श्लोक हैं। अन्त में एक श्लोक राजयोग पर इस प्रकार दिया है—

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे यदा वक्खाने रिपौ आफ़ताबः।
अतारिद विलग्ने नरो बख्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः॥

अर्थात् जिसके जन्म-समय में बृहस्पति केन्द्र में अथवा त्रिकोण में और सूर्य छठे घर में और बुध लग्न में हों तो वह मनुष्य अपने समय का बड़ा आदमी वा राजा हो।

ख़ानाख़ाना तो हरफ़न मौला थे, ज्योतिष में भी दख़ल रखते थे और उसपर एक पुस्तक भी लिख दी।

कहते हैं कि शतरंज के खेल पर उन्होंने एक पुस्तक

लिखी थी। परन्तु वह अभी तक किसी को मिली नहीं है।

ज्योतिष जाननेवालों के लिए ख़ानख़ाना की जन्म-कुण्डली भी यहाँ दी जाती है। मुंशी देवीप्रसादजी ने बड़े उत्साह और परिश्रम से इसे खोज निकाली है।

संवत् १६१३ शा० १५७८ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ चन्द्र घ० १५ पल ३७ परते पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रे घ० २६।४६ शिवयोगे घ० २४।२० इह दिवसे सूर्योदयात् गत घटी २८।१६ रात्रिगत घ० २।५५ मिथुन लग्ने लाभ पुरे श्रीमत् ख़ानख़ाना महाशयानामजनिरभूत।

सदृश भाव

रहीम की कविता में उनके पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों के भाव पाये जाते हैं। इसी रीति से रहीम के परवर्ती कवियों की कविताओं में रहीम के अनेक भाव मिलते हैं। ऐसे सदृश भाव के अनेक उदाहरण टिप्पणी में दिये भी गए हैं। कई कवियों की समान भाव की कविता मिलने के अनेक कारण होते हैं। परवर्ती कवि जानबूझ कर वा सहज भाव से पूर्ववर्ती कवि के भाव को लेकर कविता करता है और अपनी ओर से उसमें कुछ चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। कभी केवल चोरी करके ही भाव को अपना लेता है और कभी केवल अनुवाद मात्र ही करता है। चोरी करने की अवस्था में ही भावापहरण निन्दनीय है। अन्य अवस्थाओं में सदृश भाव होना दोष नहीं माना जा सकता।

रहीम दूसरों के भाव लेकर भी अपनी कविता में ऐसा चमत्कार और रोचकता उत्पन्न कर सके हैं कि उनकी कविता की सभी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। इन्होंने जिन कवियों के भाव लिये हैं उनके शब्दाडम्बर को छोड़कर मुख्य भाव को इस उत्तमता से प्रकट किया है कि अनुवाद होते हुए भी इनकी कविता मौलिक मालूम होती है। जनसाधारण तक को इनकी कविता इतनी प्रिय हुई है कि हमने ग्रामीणों तक के मुख से इनके दोहे सुने हैं। इन समस्त कारणों से रहीम पर भावापहरण का लांछन नहीं लगाया जा सकता है।

आज कल तुलनात्मक समालोचना के नाम से समान भाव के छन्दों से एक कवि की तुलना दूसरे कवि से की जाती है। किसी कवि को दो-एक छन्द के ही आधार पर आकाश पर चढ़ा दिया जाता है और दूसरे को बलात् पाताल में ढकेल दिया जाता है। इस प्रकार कवियों का स्थान नियत करने की रीति से हम पूर्णतया सहमत नहीं हैं। इस रीति की समालोचना से कवियों के साथ अन्याय होना संभव है। तुलनात्मक समालोचना अवश्य होनी चाहिये, किन्तु एक ही दो छन्दों के आधार पर एक को दूसरे से घटाने का प्रयत्न करना दोषपूर्ण है। यहाँ रहीम की अन्य कवियों के साथ तुलनात्मक समालोचना केवल इसी उद्देश्य से की जाती है कि साहित्य-सेवियों को पता लग जाय कि पूर्ववर्ती कवियों का रहीम की कविता पर, और रहीम की कविता का परवर्ती कवियों पर किस प्रकार और कितना प्रभाव पड़ा। हिन्दी साहित्य में रहीम का वास्तविक स्थान तो ३०० वर्ष से निश्चित है। कारण कि दो-चार कवियों को छोड़ कर रहीम की ही कविता का, लोकप्रिय होने के कारण, जनसमुदाय में सबसे अधिक प्रचार है।

रहीम और संस्कृत कवि

हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों ने अनेकानेक संस्कृत कवियों के भावों को अपनी कविता में स्थान दिया है। सूर, तुलसी, केशव, विहारी, सेनापति आदि हिन्दी के महाकवि भी सैकड़ों भावों के लिये संस्कृत कवियों के ऋणी हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। हिन्दी का मूल परंपरागत संस्कृत से ही है। हिन्दी के कवि छंद, रस, अलंकार सब संस्कृत के ग्रन्थों ही से सीखा करते थे, इसलिये संस्कृत कवियों के भाव, बिना प्रयत्न के अनायास ही हिन्दी कवियों के हृदय में उद्भूत होते हैं। इसी रीति से जब से उर्दू कविता पर फ़ारसी का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ तभी से उर्दू कविता में फ़ारसी कवियों के भाव आने लगे।

रहीम स्वयं संस्कृत के पंडित थे उनकी सभा में अनेक पंडित-विद्वान् हिन्दी कवि-वर्तमान थे। रहीम की कविता में यदि संस्कृत कवियों की उक्तियाँ पाई जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। इससे तो रहीम का संस्कृत-पांडित्य और व्रजभाषा-प्रेम सूचित होता है। पाठक देखें कि कैसी सरल भाषा में किस सुन्दरता से भावों का समावेश किया गया है और यथार्थ में तो रहीम की विशेषता भी स्वाभाविकता, सरलता तथा सहज सौंदर्यता ही में है।

(१) आदिकवि भगवान वाल्मीकि मुनि का एक श्लोक हैः-

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः॥

इसी भाव को रहीम ने भी एक दोहे में कहा हैः-

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार॥

यद्यपि रहीम दोहे में 'सरितोद्रमाः' का भाव नहीं लासके, परन्तु 'पहार' कह देने के पश्चात, हमारे विचार से, सरितोद्रमाः कहने की कुछ आवश्यकता भी नहीं रहती। मुख्य भाव दोहे में अच्छी तरह प्रकट हो गया है। हाँ, घन आनन्द-जी ऐसा नहीं कर सके, उन्होंने केवल इतना लिखने ही में संतोष किया "तब हार पहार से लागत है अब बीचन आइ पहार परे"

कदाचित् घन आनन्दजी ने रहीम से ही भाव लिया है क्योंकि "बीचन पहार परे" शब्द बिलकुल मिलते हैं।

(२) रहीम का एक बहुत प्रसिद्ध दोहा है:—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

किसी संस्कृत कवि के कथन का ही भाव इस दोहे में है।

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः।
प्रावेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते॥

(३) साधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीणवित्तोपि सर्वदा।
शुष्कोपि हि नदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः॥

याचना सज्जन से ही करनी योग्य है चाहे वह क्षीणवित्त (धन-हीन) ही क्यों न हो।

रहीम ने भी कहा है।

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुंआ खनावत लोग॥

शायद रहीम के इस सिद्धान्त को ही जानकर याचक वृन्द रहीम की अवनत दशा में भी उनको इतना तंग करते थे कि उनको विवश होकर कहना पड़ा था—

ए रहीम दर दर फिरें, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं॥

(४) किसी कवि की अन्योक्ति है—

हेलोल्लासित कल्लोल धिक्ते सागर गर्जितम् ।
तव तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ॥

रहीम का दोहा:—

धनि रहीम जल कूप को, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥

रहीम श्लोक के समस्त भाव को दोहे में नहीं ला सके, परन्तु बाबा दीनदयाल गिरि ऐसा कर सके हैं—

गरजे बातन ते कहा, धिक नीरध गंभीर ।
विकल बिलोकें कूप-पथ, तृषावंत तव तीर ॥

(५) दुर्जन से बैर अथवा प्रीति न करने के लिये किसी कविने कहा है:—

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥

रहीमने भी एक सोरठे में कहा है:-

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों ।
तातो जारे अंग, सीरे पै कारो करे ॥

(६) उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा ।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

सूर्य उदय होने के समय जैसा ही लाल होता है वैसाही अस्त-होने के समय होता है । महत् पुरुष संपत्ति और विपत्ति के समय एक समान ही रहते हैं-

रहीम ने इसी भाव को सूर्य के स्थान में चन्द्रमा का वर्णन करके व्यक्त किया है-

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सहि साँति ।
उवत चन्द जिहिं भाँति सों, अथवत ताही भाँति ॥

(७) लक्ष्मी की चंचलता प्रसिद्ध है । कभी एक के पास रहती है, कभी उसको छोड़कर दूसरे के पास चली जाती है । इस चंचलता का कारण किसी संस्कृत कविने यह बताया है कि लक्ष्मी के पिता समुद्र ने यह भूल की है कि लक्ष्मी का विवाह पुराणपुरुष अर्थात वृद्ध (भगवान) के साथ किया है ।

यद्वदन्ति चपलेत्यपवादं नव दूषणमिदं कमलायाः ।
दूषणं जलनिधेर्हि भवत्तद्यत्पुराणपुरुषाय ददौताम् ॥

रहीमने इस समस्त भाव को एक दोहे में अच्छी रीति से निभाया है :—

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥

(८)-न सौख्य सौभाग्यकरा गुणा नृणां । स्वयं गृहीताः सुदृशां कुचा इव ॥
परैर्गृहीता द्वितयं वितन्वते । न तेन गृह्णान्ति निजं गुणं बुधाः ॥

आत्मश्लाघा करना विद्वान निन्दनीय समझते हैं, उसमें आनन्द नहीं आता । स्त्री को स्वयं अपने कुच-मर्दन करने से आनन्द नहीं होता ।

रहीम ने इस भाव को एक दोहे में प्रकट किया है—

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु ।
ज्यों तिय आपन कुच गहे, आपु बड़ाई आपु ॥

(९)-जीवन ग्रहणे नम्रा गृहीत्वा नरुन्नताः ।
किं कनिष्ठाः किमुज्येष्ठा वटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥

जीवन अर्थात् जल (दूसरे पक्ष में प्राण)· ग्रहण करने

(याचना करने) में नीचे मुख (विनीत), ग्रहण करने के पश्चात ऊंचे मुख (उद्धत) घट यंत्र (रहट) की तरह दुर्जन होते हैं।

रहीमने इस श्लोक का अनुवाद किया है—

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावे पीठ॥

(१०) याचकनिंदा करते हुए रहीमने लिखा है !

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात॥

यह बात स्पष्ट रूप से कही जाती है कि उपर्युक्त दोहा इस संस्कृत श्लोक का अक्षरशः अनुवाद हैः-

याचना हि पुरुषस्य महत्वं नाशयत्यखिलमेव तथाहि।
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन्॥

(११) इसी प्रकार के रहीम के अन्य दोहे इस प्रकार हैंः—

रहिमन बिगरी आदि की, बनैं न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बाँवने नाम॥

अथवा

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैड़ वसुधा करी, तऊ बावने नाम॥

इनका भाव भी संस्कृत से ही लिया गया है। हम एक श्लोक देते हैं जिससे यह बात स्पष्टतया विदित हो सकेगी-

अग्रेलघिमा पश्चान्महतापि पिधीयते नहिं महिम्ना।
वाम्न इति त्रिविक्रमभिदधति दशावतार विदः॥

(१२) कुसंगति का दुष्परिणाम दिखाने के लिये संस्कृत में एक श्लोक है:—

सच्छिद्र निकटे वासो न कर्त्तव्यः कदाचन ।
घटी पिबति पानीयं ताड्यते झल्लरी यथा ॥

रहीम ने भी इसी भाव पर यह दोहा रचा है:—

रहिमन नीच प्रसंग ते, नितप्रति लाभ विकार ।
नीर चुरावै सम्पुटी, मारु सहत घरियार ॥

(१३) दुर्वृत्तसंगतिरनर्थपरम्पराया
हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र ।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
आप्नोति बंधनमसौ किल सिंधुराजः ॥

रहीम का भी दोहा इसी भाव का इस प्रकार है—

बस कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥

और बहुत से दोहों के भाव संस्कृत श्लोकों से मिलते हैं। सब यहां उद्धृत करने से ग्रंथ-विस्तार का भय है, इस कारण केवल इतने ही श्लोक यहाँ दिये गये हैं।

रहीम और महात्मा कबीरदास

कबीरदासजी रहीम के पूर्ववर्ती कवि हैं। उनके कुछ साखियों में रहीम के कुछ दोहों के भाव ही नहीं मिलते, वरन कुछ में तो शब्द तक मिलते हैं। उन्हें देख कर संदेह होता है कि रहीम ने कबीरदासजी के केवल भावों ही नहीं लिये हैं, बल्कि पूरी चोरी की है। परन्तु यह बात अवश्य विचारणीय

है कि कबीरदासजी ने अपनी कविता लिखी नहीं थी । *लोगों ने बहुत काल तक उसको मौखिक रूप में ही याद रक्खा था। कबीरदासजी के देह-त्याग के पश्चात् उनकी कुछ कविता लिखी गई थी और कुछ तो बहुत बाद में लिपिबद्ध हुई थी। यह अधिक संभव है कि बहुत काल बाद लिपिबद्ध होने के कारण उस कविता में अन्य कवियों के छंद भी मिल गए हों । यह बात तो निसंदेह कही जा सकती है कि कबीर-दासजी की साखियों में ऐसी साखियां अवश्य हैं जो उनके देहावसान के १५० बरस बाद बनी होंगी और जो अब कबीर साहब के नाम से उनके ग्रंथों में संग्रहीत पाई जाती हैं ।

यह बात निर्विवाद है कि तमाखू का प्रचार भारतवर्ष में कबीरदासजी के बहुत पीछे जहांगीर के समय में हुआ था। परन्तु बेलवेडियर प्रेस में छपे 'कबीर-साखी संग्रह' नामक ग्रंथ में कुछ साखियाँ दी हैं जिनमें तमाखू की निन्दा है:—

गऊ जो विष्टा भच्छई, विप्र तमाखू भंग ।
सस्तर बांधैं दर्सनी, यह कलिजुग का रंग ॥
भांग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब ।
कह कबीर इनको तजे, तब पावे दीदार ॥

तमाखू का इतना प्रचार कि ब्राह्मण भी उसको खाने-पीने लगे हों, जहाँगीर के भी बाद ही हुआ होगा। यह साखियाँ कबीरदासजी के दो सौ वर्ष बाद लिखी गई होंगी। जब कबीरदासजी की कविता में उनके इतने समय बाद की

---

* स्वयं कबीरदासजी ने इस तथ्य के प्रमाण में कहा है :-
मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हात ।
चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात ॥

भी कविता मिल गई है तो यह भी संभव है कि रहीम के वे दोहे जो कबीर साहब के सिद्धान्त के अनुकूल हैं उनकी कविता में मिल गए हों। अस्तु, यहां पर हम कबीरदासजी की वे साखियां जो रहीम के दोहों से मिलती हैं लिखते हैं। रहीम-रत्नावली के दोहों का नम्बर उनके आगे लिखा जाता है, जिससे मिलाने में सुविधा हो।

(१) जो विभूति साधुन तजी, तिहि विभूति लपटाय।
जौन वमन करि डारिया, स्वान स्वाद सो खाय॥ ८३॥

(२) भजूँ तो कोहै भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन आन॥ १३१॥

(३) मान बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचानि।
मीति करे मुख चाटई, बैर किये तन हानि॥ १८२॥

(४) मागन गये सो मरि रहे, मरे सो मागन जाहिं।
तिन सों पहिले वे मुए, होत करत जो नाहिं॥ २३४॥

(५) नवन नवन बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनों बहुते नवैं, चीता चोर कमान॥ १५४॥

(६) छिमा बड़िन को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥ ५५॥

(७) बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥ २७०॥

(८) वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर॥ ८८॥

(९) बूंद जो परी समुंद में, सो जानत सब कोय।
समुद समाना बुन्दमें, जाने विरला कोय॥ २७७॥

इनके अतिरिक्त और भी कई साखियाँ ऐसी हैं जिन

के भाव रहीम के दोहों से मिलते हैं। परन्तु विस्तार-भय से नहीं लिखी जातीं।

रहीम और सूरदासजी

मुसलमान होने पर भी रहीम श्रीकृष्ण और भगवान रामचन्द्र के पूर्ण भक्त थे। कहा जाता है कि इनको श्रीकृष्ण भगवान का इष्ट था। भक्तमाल की टीका में रहीम-संबंधी एक कथा भी है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी से इनकी भेंट हुई थी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सूरदासजी से भी इनका समागम हुआ था, क्योंकि सूरदासजी का गोलोकवास सं० १६२० के लगभग हो गया था। उस समय रहीम शायद विद्याभ्यास ही कर रहे होंगे। परन्तु कृष्णभक्त होने के कारण इन्होंने सूरदासजी की कविता का आस्वादन अवश्य किया होगा। नहीं कहा जा सकता रहीम का ब्रजभाषा-प्रेम और उसपर उनका इतना आधिपत्य सूरदासजी तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों की कविता के कारण है या नहीं। यदि रहीम कृत रासपंचाध्यायी मिल जाती, तो इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता था। सूरदासजी तथा रहीम की कविताओं के समान भाव के कतिपय छंद यहां पर दिये जाते हैं:—

(१) सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत को फल सूर॥ —सूरदास

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन॥ —रहीम

(२) (अ) नैनाँ लोभहिं लोभ भरे॥
जैसे चोर भरे घर ही में, बैठत उठत खरे।
'अंग अंग शोभा अपार निधि, लेत न सोच परे॥

(आ) रूप देखि तन थकित रही हौं, मानो भौन भरे की चोरी।

(इ) अँखिया अजान भई ॥

यों भूली ज्यों चोर भरे घर, चोरी निधि न लई।

बदलत भोर भयो पछतानी, करते छाँड़ि दई ॥ --सूरदास

करम हीन रहिमन लखो, धँस्यो बड़े घर चोर।

चिंतित ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥ --रहीम

(३) कहियो जाय सूर के प्रभु सों, केर पास ज्यों बेर। --सूरदास

कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर को संग। —रहीम

(४) जो छिपा छरद करि सकल संतनि तजी, तासु मति मूढ़ रस ठानी

—सूरदास

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।

ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ --रहीम

(५) मानत नहीं लोक मर्यादा हरि के रंग मजी।

सूरश्याम को मिलि चूने हरदी ज्यों रंग रजी ॥ —सूरदास

रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रंग दून।

ज्यो जरदी हरदी तजे, तजे सफेदी चून ॥ --रहीम

(६) जोबन रूप दिवस दस ही को ज्यों अँजुरी को पानी। — सूरदास

घटत घटत रहिमन घटे, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥ —रहीम

(७) कुसमय मीत का को कवन ?

कमल को रवि परम हित है, कहत श्रुति अस बयन।

घटत वारिधि भयो दारुण, करत कमलन दहन ॥--सूरदास

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।

रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय ॥ —रहीम

(८) व्याध मिरगा बाण बेध्यो, कोटि कानन गवन।

अंग शोणित भयो बैरी, खोज दीनो तवन ॥ --सूरदास

रहिमन असमय के परे, हित अनहित है जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय॥ —रहीम

रहीम और गो० तुलसीदासजी

गो० तुलसीदासजी और रहीम में परम मित्रता थी। दोनों में पत्र-व्यवहार भी था, तो मिले भी अवश्य होंगे। दोनों ने एक दूसरे की कविता देखी होगी। रहीम को बरवै छुन्द बहुत प्रिय था। उन्होंने कुछ बरवे बनाकर गो० तुलसीदास-जी के पास भेजे थे और अनुरोध किया था कि गोस्वामीजी भी बरवे छंद में कविता करें। इस ही अनुरोध के कारण गोस्वामीजी ने बरवे रामायण निर्माण की थी। गोस्वामीजी के वैकुण्ठ वास के सात वर्ष पश्चात् ही उनके पट्ट शिष्य बाबा बेनीमाधवदास ने "गुसांईं-चरित" नाम से गोस्वामीजी का जीवनचरित्र लिखा है, उसमें इस का वर्णन है:—

कवि रहीम बरवे रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुन्दर छन्द में, रचना कियेउ प्रकास॥

यह बात संवत १६६८ की मालूम होती है। रहीम-रत्नावली में पृष्ठ ६३ पर हमारी नई खोज द्वारा प्राप्त जो बरवे हमने प्रकाशित कराए हैं उनके मंगलाचरण के बरवे गोस्वामी तुलसी-दासजी के रामचरितमानस के मंगलाचरण के सोरठों से मिलते हैं। रामचरितमानस के सोरठे और रहीम के बरवे यहां मिलान के लिये उद्धृत किये जाते हैं:—

(१) जिहि सुमिरत सिध होय, गणनायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुण-सदन॥ —तुलसी

बन्दहुँ विघन विनासन रिधि सिधि ईस।
निर्मल बुधि प्रकासन सिसु ससि सीस॥ —रहीम

(२) बन्दहुँ पवन कुमार, खल बन पावक ज्ञान-घन ।
जासु हृदय आगार, बसहि राम सर-चाप-धर ॥ —तुलसी

ध्यावहुँ विपति विदारन, सुवन समीर ।
खल दानव बन जारन, प्रिय रघुबीर ॥ —रहीम

(३) बन्दौं गुरु–पद–कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि ।
महामोह तम-पुञ्ज, जासु वचन रविकर-निकर ॥ —तुलसी

पुनि पुनि बन्दहुँ गुरु के पद जलजात ।
जिहि प्रसाद ते मन के तिमिर बिलात ॥ —रहीम

गोस्वामीजी ने भी रहीम के अनुरोध को स्वीकार करके बरवे रामायण सा छोटा किन्तु उत्कृष्ट ग्रंथ निर्माण कर दिया ।

रहीम और तुलसीदासजी से साहित्य-प्रेमी मित्रों की कविता में यदि सदृश भाव मिलें तो कौन आश्चर्य है, यदि न मिले तो आश्चर्य अवश्य होना चाहिये । दोनों में से किसी पर भावापहरण का दोष लगाना उचित नहीं होगा ।

रहीम और गोस्वामीजी के सदृश भाव के अनेक उदाहरण टिप्पणी में यथास्थान दिये गए हैं, कुछ यहाँ पर और दिये जाते हैं:—

(४) परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥ —रहीम

बिन प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न हिये कलेस ।
बामन ह्वै बलिको छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥ —तुलसी

(५) कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग ।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥ —रहीम

नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिसाल ।
कदली बदरी विटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥ —तुलसी

(६) जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिंन हित होय ॥ —रहीम

आपन छोड़ो साथ जब, तादिन हितू न कोय ।
तुलसी अंबुज अंबु बिन, तरनि ताउ रिपु होय ॥ —तुलसी

(७) रहिमन धोखे भाव से, मुख तें निकसें राम ।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥ —रहीम

तुलसी जिनके मुखन ते, धोखेहु निकलत राम ।
तिन के पग की पगतरी, मेरे तन को चाम ॥ —तुलसी

और भी बहुत उदाहरण इन-दोनों मित्रों के सदृश भाव के मिलते हैं, सब को यहां देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

रहीम और रसखान

यह दोनों मुसलमान कवि समकालीन और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के भक्त थे । दोनों हीने भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम रंग में रंग कर कविता की है । इनके भी सदृश भाव के एक दो उदाहरण दिये जाते हैं ।

(१) रहिमन को कोउ का करे, ज्वारी चोर लबार ।
जो पत राखनहार है, मखान चाखनहार ॥ —रहीम

काहे को सोच करे रसखानि कहा करिहै रविनंद बिचारो ।
ताखन जाखन राखिय माखन चाखनहारो सो राखनहारो ॥

—रसखान

(२) पलटि चली मुसकाय, दुति रहीम उपजाय अति ।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥ —रहीम

(अ) यों जग जोति उठी तन की उसकाय दई मानो बाती दिया की ।
(आ) जोबन जोति सो यों दमके उसकाय दई मानो बाती दिया की ।

—रसखान

(३) परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नैकु न देइ ॥ —रहीम

जानत हौं जियकी रसखानि सु काहे को ऐतिक बात बढ़ैहो ।
गोरस के मिसि जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नैकु न पैहो ॥

—रसखान

(४) हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सरपूर ।
खैंचि आपनी ओर कों, डारि दियो पुनि दूर ॥ —रहीम

मोहन छबि रसखानि लखि, अब दृग आपनि नाँहि ।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाँहि ॥ —रसखान

रहीम और बिहारी

महाकवि बिहारी की कविता में भी रहीम के कुछ भाव पाये जाते हैं । दोनों ने सतसई तो अवश्य रची, परन्तु दोनों की कविता का उद्देश्य तथा प्रयोजन भिन्न था । परन्तु फिर भी समान भाव के छंद अवश्य मिलते हैं ।

(१) रहीम का एक दोहा है जो उन्होंने उस समय कहा था जब उनको गोवर्धननाथ जी के मंदिर में नहीं घुसने दिया गया था और श्रीनाथजी ने गोविन्दकुण्ड पर स्वयं दर्शन दिये थे ।

खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आजु काल्ह मोहन गही, बंस दिया की रीति ॥ —रहीम

बिहारी ने इसी भाव को पतंग का वर्णन करके कहा है—

दूर भजत प्रभु पीठ दे, गुन बिस्तारन काल ।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल ॥ —विहारी

(२) धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥ —रहीम

विहारी जयपुर जोधपुरमें रहे थे, उन्होंने वहाँ मतीरा देखा था, इसलिये मतीरा का वर्णन करके इसी भावको प्रकट किया है :—

विषम वृषादित की तृषा, जिये मतीरनु सोधि ।
अमित अपार अगाध जल, मारो मूँड पयोधि ॥ —विहारी

(३) दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यो रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥ —रहीम

सतसईया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर ।
देखत में छोटे लगें, घाव करें गंभीर ॥ —विहारी

(४) प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे
नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशी भूमिकां ॥ —रहीम

मोहू दीजे मोष, ज्यों अनेक अधमनु दियो ।
जो बाँधे ही तोष, तौ बाँधो अपने गुननु ॥ —विहारी

(५) कुटिलम संग रहीम कहि, साधू बचते नाँहि ।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाँहि ॥ —रहीम

क्यों बसिये क्यों निबहिये, नीति नेहपुर माहिं ।
लगा लगी लोयन करें, नाहक मब बँध जाँहिं ॥ —विहारी

(६) रहिमन छोटे नरनु सों, होत बड़ो नहिं काम ।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥ —रहीम

कैसे छोटे नरनु ते, सरत बड़न को काम ।
मढ़्यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम ॥ —विहारी

(७) करत नहीं अपरधवा, सपनेहु पीव ।
मान करे की सधवा, रहि गइ जीव ॥ —रहीम

रात दिना हौंसे रहे, मान न ठिक ठहराय ।
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय ॥ —विहारी

(८) खेलत जानेसि रोलिया, नंदकिसोर ।
छुइ वृषभानु कुमरिआ, भैगा चोर ॥ —रहीम

दोऊ चोर मिहीचनी, खेलु न खेल अघात ।
दुरत हिये लपटाइके, छुवत हिये लपटात ॥ —विहारी

रहीम और मतिराम

मतिराम रहीम के परवर्त्ती कवि हैं । संभव है जहाँगीर के दरबारमें रहीम से मिले हों । रहीमकी कविता का जितना प्रभाव मतिराम पर पड़ा है, उतना अन्य किसी हिन्दी कवि पर नहीं पड़ा प्रतीत होता । मतिरामका सबसे प्रसिद्ध और सबमें उत्कृष्ट ग्रंथ 'रसराज' है । रसराजके कर्ता होने ही के कारण मतिराम 'हिन्दी नवरत्न' में स्थान पा सके हैं । कहा जाता है कि "हिन्दीमें सर्वसम्मतिसे माधुर्य और लालित्य गुण प्रधान हैं । इन सद्‌गुणोंकी नींव मतिरामके द्वार पड़ी ।......मधुर अक्षरोंका प्रयोग मतिरामने प्रायः सबसे अच्छा किया है......इस एक ही गुणसे मनुष्य जाति के बड़े उपकारक हुए ।" *

रसराजमें शृङ्गार रसान्तर्गत नायिकाभेदका वर्णन है ।

---

* हिन्दी नवरत्न (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ३६९

रसराजका नायिकाभेद, रहीम के बरवे नायिकाभेद पढ़ने के पश्चात्, वरन् यह कहना उचित होगा कि, उसके आधार पर ही रचा गया है। हमारे ऐसा कहने का कारण यह है कि रसराज में जो उदाहरण नायिकाभेद के दिये गये हैं, उनमें से बहुतों के भाव बरवे नायिकाभेदसे लिये गये हैं। कहीं-कहीं तो मुख्य-मुख्य शब्द भी रहीमके ही प्रयोग किये हैं। बरवे-नायिकाभेद और रसराजके उदाहरणोंको सरसरी रीति से ही पढ़ने से यह बात भलीभाँति विदित हो जाती है। पं० कृष्णविहारी मिश्रजी ने 'मतिराम-ग्रंथावली' की बृहद् भूमिका में मतिराम और रहीमके भाव-सादृश्यका वर्णन करते हुए मतिराम के इस रीतिपर ऋणी होनेका वर्णन नहीं किया है। और न मिश्रबंधुविनोद तथा हिन्दी नवरत्नकारोंने ही इस तथ्यका स्पष्टीकरण किया है। 'रहीम', 'रहिमन विलास' और 'रहीम कवितावली' के कर्त्ताओंको भी यह बात ध्यान में नहीं आई। हम कुछ उदाहरण बरवे नायिकाभेद और रसराजसे अपने कथन की पुष्टि में देते हैं:—

१ प्रथम अनुसयना—

ग्रीषम दहत दवरिया, कुञ्ज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनअहिं, बाढ़त पीर॥——रहीम

ग्रीषम ऋतु में देखि कै, बन में लगी दवारि।
एक अपूरब बात यह, जरत हिए बर नारि॥——मतिराम

२ द्वितीय अनुसयना—

जनि मरु रोइ दुलहिआ, करि मन ऊन।
सघ्न कुंज ससुररिआ, औ घर सून॥——रहीम

केलि करैं मधुमत्त जहँ, घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे, सखी! सघन बन कुंज॥——मतिराम

३ तृतीय अनुसयना—

मितवा करनि पछुरिआ, सुमन सपात।
फिरि फिरि ताकि तरुनिआ, मन पछितात ॥——रही

छरी सपल्लव लाल कर, लखि तमाल की हाल।
कुम्हिलानी उर साल धरि, फूल माल ज्यों बाल ॥——मतिराम

पाठक देखेंगे कि तीनों प्रकार की अनुसयनाओंके उदाहरणों के भाव मतिराम ने रहीम से ही लिये हैं। भावसाम्य-के साथ-साथ शब्दसाम्य तो बहुत ही आश्चर्यजनक है। शब्द-साम्यका दिग्दर्शन करानेके हेतु मुख्य-मुख्य शब्द पाद-रेखा द्वारा सूचित किये गये हैं। और भी उदाहरण लीजिये—

४ अन्यसंभोगदुःखिता—

मोहित हरवर आवत[1], भौ पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, औ तन स्वेद ॥——रहीम

कहत तिहारो रूप यह, सखी पैंड़[2] को खेद।
ऊँची लेत उसास है, कलित सकल तन स्वेद ॥——मतिराम

५ प्रेमगर्विता—

औरन पाय जवकवा, नाइन दीन।
तुम्हें अंग.रत गोरिया, न्हान न कीन ॥——रहीम

औरन के पाँवन दियो, नायनि जावक लाल।
प्रान पियारी रावरी, परखति तुम्हें रसाल ॥——मतिराम

६ मुग्धा खंडिता—

सखि सिख सीख, नवेलिआ कीन्हेंसि मान।
पिय लखि कोप भवनवाँ ठानेसि ठान ॥——रहीम

---

१ पाठान्तर——सखि इत हरबर आवत २ पैंड़ = मार्ग, रास्ता

बाल सखिन की सीख तें, मान न जानति ठानि ।
पिय बिन आगम भौन में, बैठी भौंहे तानि ॥—मतिराम

ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त बरवे में 'लखि' पाठ अशुद्ध है । शुद्ध पाठ 'बिन' ही होगा, क्योंकि मुग्धा होने के कारण नायिका स्वयं मान करना नहीं जानती । सखियों के सिखाने से मान तो करती है, परन्तु अनसमझ होने के कारण पति के बिना ही कोपभवन में मान ठान कर बैठी है । 'रहिमन-विलास' तथा नकछेदी तिवारी की पुस्तक में 'बिन' ही पाठ है । परन्तु हमने विवश होकर अपनी प्राचीन प्रति के अनुसार लखि' पाठ ही मूल में दिया है ।

७ पुनः मुग्धा खंडिता—

सीस नवाइ नवेलिआ, निचवा जोइ ।
छिति खनि छोर छिगुनिआ, सुसुकनि रोइ ॥—रहीम

लिखै करके नख सों पग को नख, सीस नवाय के नीचे ही जोवै ।
बाल नवेली न रूसनो जानति, भीतर भौन मसूसन रोवै ॥—मतिराम

८ परकीया खंडिता—

जेहि लखि सजन सगेइया, छुट घर बार ।
अपने हति पिअरवा, सोच परार ॥—रहीम

कोउ कितेकौ उपाय करो कहुँ होत है अपने पीउ पराए ।—मतिराम

९ मुग्धाकलहांतरिता—

आइहु अबहिं मवनवा, तुरतहिं मान ।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछतान ॥—रहीम

आई गौने काल की, सीखी कहाँ सयान ।
अबही ते रूसन लगी, अबही तें पछतान ॥—मतिराम

१० मुग्धा विप्रलब्धा—

मिलेउ न कंत सहेटवा, लखि उड़राइ ।
धनियाँ कमल वदनियाँ, गौ कुँमिलाइ ॥—रहीम

मिल्यो न कंत सहेट में, लख्यो नखत को राय ।
नवल बाल को कमल सो, गयो बदन कुँभिलाय ॥—मतिराम

११ मुग्धा उत्कंठिता—

गौ जुग जाम जमनिआ, पिय नहिं आइ ।
राखेहु कौन सवतिआ, इहु बिलमाइ ॥—रहीम

बीति गई जुग जाम निसा मतिराम मिटी तम की सरसाई ।
जानति हौं कहुँ और तिया से रहे रस में रमि कै रसराई ॥—मतिराम

१२ अनुकूल नायक—

करत नहीं अपरधवा, सपनेहुँ पीव ।
मान करै की सधवा, रहिगइ जीव ॥—रहीम

सपनेहू मनभावतो करत नहीं अपराध ।
मेरे मन ही में रही, सखी मान की साध ॥—मतिराम

१३ मुग्धा अभिसारिका—

चली लिवाइ नवेलिअहिँ, सखि सब संग ।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतंग ॥—रहीम

चली अली नवलाहिँ लै, पिय पै साजि सिंगार ।
ज्यों मतंग अँड़दार को, लिये जाति गँड़दार ॥—मतिराम

१४ परकीया प्रवत्स्यतिपतिका—

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
तिय की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥—रहीम

मोहन ललाको सुन्यो चलन विदेस भयो...
......नागरि नवेली रूप आगरि अकेली रीती,
गागरी ले ठाढ़ी भई बाट ही के घाट में ॥--मतिराम

१५ परकीया आगतपतिका—

पूछत चली खबरिया, मितवा तीर।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर ॥--रहीम

सुन्यो मायके ते वहै, आयौ बाम्हनु कंत।
कुसल बूझिवे के मिसहिं, लीनो बोलि इकंत ॥--मतिराम

१६ परिहास—

बिंहसत भँउह चढ़ाये, धनुष मनोज।
लावत उर उपटनवाँ, ऐंठि उरोज ॥--रहीम

भुज फुलेल लावत सखी, कर चलाय मुसकाय।
गाढ़े गहे उरोज पिय, बिहँसी भौंह चढ़ाय ॥--मतिराम

इसी तरह के और बहुत से उदाहरण रसराज में से दिये जा सकते हैं, जिनमें मतिरामने रहोमके भाव ज्यों के त्यों उन्हीं के शब्दों में बहुत थोड़े हेर फेर के साथ लिये हैं। ऐसा पूर्ण सादृश्य देखकर किसी को संदेह हुए बिना नहीं रह सकता कि रसराज का निर्माण बरवे नायिकाभेद के आधार पर ही किया गया है। मतिरामके सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थकी उत्कृष्टता रहीम की कविता पर ही निर्भर है।

केवल रसराज ही में नहीं, मतिराम-सतसईमें भी रहीम की कविता का समुचित प्रभाव प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। उसके केवल दो चार ही उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) खेलत जानेसि रोलिया, नंदकिसोर।
छुइ वृषभान-कुमरिया, भैगा चोर ॥--रहीम

छुवत परस्पर हेर कै, राधा नंदकिसोर।
सब में वेई होत है, चोर मिचहनी चोर॥ ‡--मतिराम

(२) बाहर लैके दियवा, बारन जाय।
सास ननद घर पहुँचत, देत बुझाय॥--रहीम
बार बार वा गेह सों, बारि बारि लै जात।
काहे ते बिन बात ही, बाती आजु बुझाति॥--मतिराम

(३) मन सों कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगनि जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान॥--रहीम
मंत्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहतु सुख साज।
मनहि बाँध दृग देत हैं, मनहुँ मार को राज॥ --मतिराम

(४) नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोक सु, अचरज कौन॥--रहीम
तेरो सखी सुहाग बर, जानत हैं सब लोक।
होत चरण के परस पिय, प्रफुलित सुमन असोक॥--मतिराम

इन उदाहरणों से यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि मतिराम की कविता सर्वथा रहीम की ऋणी है। वास्तवमें तो मतिराम की कविता में रहीम के भाव ही नहीं मिलते हैं, किन्तु जो माधुर्य्य और प्रसाद गुण मतिरामकी कविता में पाये जाते हैं उसका मुख्य कारण रहीम की कविता का प्रभाव ही है। रहीम भी संयुक्त वर्णोंका बहुत कम प्रयोग करते हैं। इनका 'नगरशोभा वर्णन' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। माधुर्य्य और लालित्य ही मतिरामकी कविताके मुख्य गुण हैं। उपर्युक्त उदाहरणोंके कारण ही कहना पड़ता है कि मतिराम की कविता पर रहीम का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। मति-

‡ यह दोहा रसराज में भी संयोग श्रृंगार के उदाहरण में दिया है।

राम जैसे महाकवि भी रहीम के ऋणी हैं। हिन्दी में नायिका-भेद विषयक ग्रंथों में जब 'बरवे नायिकाभेद' एक आदि ग्रन्थों में से है, तब रसराज रचते समय मतिराम ने उसके भाव लिये हों तो आश्चर्य ही क्या ?

यद्यपि मतिराम पर रहीम के भावाऽपहरणका दोषारोपण करना अनुचित है तथापि यह कहना अत्युक्ति न होगा कि मतिराम की, रसराज के कारण, नवरत्नों में जो गणना होती है उसका वास्तविक कारण रहीम-कृत बरवे नायिकाभेद ही है। जहाँगीरकी आज्ञासे आगरेमें फूलमंजरीकी रचना करनेवाले मतिराम कुछ समयके लिये रहीमके समकालीन अवश्य थे। और जब दोनों का जहाँगीरके दरबारसे संबंध भी था, तो परस्पर परिचय अवश्य हुआ होगा। केशव, गंग, मंडन, प्रसिद्धि आदि अगणित कवियों की तरह मतिराम को भी काव्यप्रेमी रहीमके यहाँ आश्रय मिला हो तो क्या संदेह हो सकता है ? यह अनुमान करना असंगत नहीं हो सकता कि रहीमने मतिराम को काव्य-रचना करने के लिये अवश्य ही प्रोत्साहित किया होगा। यदि रहीम मतिरामके आश्रयदाता अथवा काव्यगुरु हों तो अश्चर्य्य ही क्या ? परन्तु मतिरामकी कविता में रहीम के इस अनुग्रह के लिये रहीम के प्रशंसारूप एक भी छंद नहीं मिलता। क्या मतिराम की यह अकृतज्ञता क्षम्य है ?

रहीम तथा मतिराम का परस्पर संबंध निश्चित करनेके लिये उनकी कविताओं में से जो साम्य हमें दिखाई दिया, वह तो हम ऊपर दिखा चुके। एक बाह्य प्रमाण भी हमारे पास है, जिससे यह भासित होता है कि मतिरामने रहीमका बरवे नायिकाभेद केवल पढ़ा ही नहीं था, किन्तु उसे अच्छी प्रकार मनन करके उसे चारु रूपसे संपादित भी किया था।

हमको खोजमें एक ग्रन्थ मिला है, जिसमें रहीम के इन बरवों के साथ मतिरामके दोहे भी दिये हैं। मतिराम के दोहे रसराज में वर्णित लक्षण-सूचक दोहे हैं। इस प्रतिमें रसराजवाले नायिका भेदके दोहे लक्षणरूपमें तथा रहीम-रचित बरवे उदारहणरूप में दिये गये हैं। इसलिये इस प्रकार के संग्रह से लक्षण उदाहरण सहित ग्रन्थमें संपूर्णताका भाव आ गया है। इस प्रकारकी एक प्रति काशी नरेश के सरस्वती भवन में भी है। और ऐसी ही एक प्रति पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र के पास भी है और कदाचित नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रहीम-कवितावली में बरवे नायिकाभेद उसी प्रतिके आधारपर दिया गया है। इन प्रतियों के अन्तिम दोहे इस प्रकार से हैं—

"लच्छन दोहा जानिये, उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भये, रस सिंगार निर्मान॥
यह नवीन संग्रह सुनो, जो देखे चित देइ।
बिबिध नायिका नायकनि, जानि भली बिधि लेइ॥

॥ इति श्री नायिकाभेद बरवा छंद पूर्ण॥"

इन दोहों से यह सिद्ध है कि इस प्रति में लक्षण-सूचक दोहों तथा उदाहरणसूचक बरवों का संग्रह किया गया है। संग्रह एकही कवि की विविध कविताओं का भी होता है और दो वा अनेक कवियों की कविताओं का भी। अबनिम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं--

१—क्या दोहे तथा बरवे एक ही कवि-रचित हैं अथवा दो कवियों के? और जो यदि एक ही कवि के रचित हैं तो वह मतिराम के हैं या रहीम के?

२—संग्रहकार कौन है? मतिराम, रहीम वा अन्य कोई व्यक्ति?

दोहे मतिराम-कृत प्रसिद्ध ही हैं और बरवे रहीम रचित। अतः यह अनुमान करना कि दोनों एक ही कवि की रचनायें हैं उतना ही हास्यास्पद होगा जितना कि यह कहना कि शिवराजभूषण के कर्ता भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे। दोहे अवश्य मतिराम के हैं, और बरवे रहीम के। हिन्दी में नायिकाभेद विषयक ग्रन्थ रचने की रीति रहीम के समय से ही चली है और संभवतः रहीम अथवा केशवदास ने चलायी है। संभव है इस विषय का आदिग्रन्थ होने के कारण रहीम को लक्षण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई हो। इस कारण लक्षण रहीम ने नहीं रचे * और पुस्तककी अपूर्णता समझकर लक्षणसूचक दोहे उसमें किसी ने संग्रहीत कर दिये हैं। जब इस संग्रह में एकही कवि की रचना नहीं है तो पहिले प्रश्न का उत्तरार्ध व्यर्थ ही है।

रसराज का निर्माण काल रहीम की मृत्यु के पश्चात् अनुमानतः संवत १६६० से १७०० तक हुआ कहा जाता है ×। इस कारण रहीम तो स्वयं संग्रहकार हो ही नही सकते। मतिराम

---

* रहीम रचित बरवे नायिकाभेद में एक बरवा लक्षण-सूचक मिलता है। वह इस प्रकार है—

पति उपपति बैसिकवा, त्रिबिध बखानि।
बिधि सों ब्याहो गुरजन, पति सो जानि॥

परन्तु यह बरवा हमारी तथा काशीनरेशकी प्रतिमें नहीं है और न मिश्र जी की प्रति में ही है। मतिराम का दोहा भी इससे मिलता है—

पति, उपपति, बैसिक त्रिविध, नायक भेद बखानि।
बिधिसों ब्याहो पति कहैं, कवि कोविद मति जानि॥

× मतिराम ग्रंथावली पृष्ठ २२२

अथवा अन्य किसी ने संग्रह किया है। अन्तिम दो दोहे, जो ऊपर उद्धृत किये हैं, वह संग्रहकारकी रचना है। इस कारण संग्रहकर्ता अवश्य एक कवि है। जब संग्रहकर्ता कवि है, तब वह दूसरे के रचित लक्षणके दोहे क्यों देता? वह स्वयं अपने बनाए लक्षण के दोहे दे सकता था। परन्तु जब दोहे मतिराम के ही हैं, तब तो यही संभव प्रतीत होता है कि मतिराम ने ही यह संग्रह किया हो। इस अनुमान के विरुद्ध कोई प्रमाण भी तो नहीं है। फिर इस पर क्यों न विश्वास किया जाय। जब रहीम की कविता से मतिराम ने लाभ उठाया है और जब दोनों सम-कालीन थे और परस्पर परिचय भी जहाँगीरके दरबार में हुआ, तो यह अवश्य विश्वास किया जा सकता है कि मति-राम ने ही यह संग्रह किया है। इन्हीं कारणोंसे हम विश्वास करते है कि यह संग्रह रहीम के बरवों की रचना से प्रस-न्न होकर स्वयं मतिराम ने ही उसे पूर्णता का रूप देने के लिये अपने रसराजके लक्षणके दोहे उसमें सम्मिलित करके किया है। एक नहीं तीन-तीन प्रतियों में इस प्रकारका संग्रह मिलना भी यह सूचित करता है कि उसका प्रचार काफी था। इस बाह्य प्रमाण द्वारा भी यह प्रतिपादित होता है कि मतिराम की कविता रहीम की सब प्रकारसे ऋणी है।

रहीम और हिन्दी के अन्य कवि।

हमने यहाँ पर संस्कृतके और हिन्दीके कुछ उत्कृष्ट कवियों के ही सादृश्य भावके छंद दिये हैं। विस्तारभयके कारण वृन्द, रसनिधि, बेरीसाल, उसमान, निहाल, जोधपुर–नरेश महाराज जसवंतसिंह, गंग, अहमद, हरिवंश, व्यास और वाजिद आदि के समान भावके छंद यथास्थान टिप्पणी में ही दिये गए हैं, उनको यहाँ पुनः प्रकाशित करना अनावश्यक है। यहाँ

ि कवदंतियों में मनोरंजन की सामग्री भी होती है, इस कारण वे मौखिक रूप में ही अनेक शताब्दियों तक जीवित रहती हैं। भोज और कालिदास अथवा अकबर–बीरबल के नाम से अनेक मनोरंजक दंतकथाएँ प्रचलित हैं, और उनमें सभी इतिहास-सिद्ध नहीं हैं। परंतु उनमें वर्णित विषय से उन पुरुषों के जीवन तथा रहन-सहन-संबंधी अनेक बातों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अनेक छोटी–छोटी बातों से ही उन महापुरुषों के चरित्र, स्वभाव आदि का भली–भाँति ज्ञान हो जाता है। इस कारण किंवदंतियों को सर्वथा कपोल-कल्पना समझ कर उनका त्याग करना ऐतिहासिक सामग्री को नाश करना है। हिंदी-साहित्य के इतिहास में तो किंवदंतियों को विशेष स्थान प्राप्त है, और जो इतिहास–प्रेमी सभी किंवदंतियोंको भ्रम-मूलक समझ कर कल्पित इतिहास गढ़ते हैं, वे शृंखलाबद्ध इतिहास का निर्माण करनेमें विघ्न उपस्थित करते हैं।

अन्य प्रसिद्ध कवियों के समान नवाब ख़ानख़ाना अब्दुर्रहीम (उपनाम रहीम) के विषय में भी अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। हिंदी-संसार में इन रहीम-विषयक किंवदंतियों का आदर भी प्रत्येक हिंदी-प्रेमी करता है। गो० तुलीदासजी, रीवाँनरेश, राणा अमरसिंह आदि अनेक समकालीन पुरुषों से संबंधित रहीम–विषयक जनश्रुतियाँ तो सभी को भली-भाँति विदित ही हैं। इन प्रचलित जनश्रुतियों के अतिरिक्त हमें कुछ और भी मालूम हुई हैं। पहिली ५ कथाएँ हमें 'चकत्ता–वंश-परंपरा' नामक एक अज्ञात लेखक की पुस्तक से प्राप्त हुई हैं। यह पुस्तक संभवतः जयपुर-नरेश सवाई माधोसिंह के समय में सं० १८२५ वि० के लगभग रची गई है। इस ग्रंथ में इन महाराज की प्रशंसा भी की गई है, और मुग़ल-राज्य (चकत्ता वंश)–संबंधी मनोरंजक बातों का वर्णन भी इसी समय तक

है। संवत् १८२५ वि० में हिंदी-गद्य की क्या अवस्था थी, यह प्रकट करने के हेतु इन दंतकथाओं को यथावत् उद्धृत करते हैं। कोष्ठक में दिए हुए शब्द सुगमता-पूर्वक भाव-प्रदर्शन करने के हेतु हमारी ओर से दिए गए हैं।

(१)

ख़ानख़ाना की पालकी में काहू[1] ने पचसेरी[2] डाली। ता प्रमान[3] खानखाना ने (उल्टा उसे) सोना दिवाय दिया और सीख दई। तब काहू ने अरज़ करी जो याने (तो) गरदन मारने के काम किए, (उसे) सोना क्यों दिवाय दिया? नवाब (ने) कही—याने हम कूँपारस जानि परीक्षा निमित्त पचसेरी पालकी में राखी है।

(२)

एक दरिद्री (ने) ख़ानख़ानाजू की ड्योढ़ी[4] (पर) जाय कही-मैं नवाब का साढ़ू हूँ। तब चोबदार (ने) नवाब सूँ खबरि करी। सो नवाब (ने) दरिद्री कूँ बुलाया (और) सिष्टाचार करि वहोत स्वागत करो। तब काहू ने (नवाब से) पूँछी--यह दरिद्री आपका साढ़ू किस तरह है? नवाब (ने) कही--संपत्ति विपत्ति दो भैन[5] हैं। सो संपत्ति हमारे घर में है और विपत्ति याके घर में है तासूँ हमारा साढ़ू है।

(३)

ख़ानख़ाना (ने) चोबदार सूँ कही--रसायनी ज्ञानी ब्राह्मण होयगा जिनोकूं आने मति देऊ। जो रसायनी ब्राह्मण होगया सो हमारे घर (ही) क्यों आवेगा। और (जो) आवता है सो (ब्राह्मण) दग़ाबाज़ है।

---

१. किसी। २. पाँच सेर का लोहे का बाट; पंसेरी। ३. उसके बोझ के बराबर। ४. दरवाजा, पोली। ५. बहिन, भगिनी।

(४)

एक सिद्ध मुख में गोली ले आकास (मार्ग से) जाते हुते। सो (सिद्ध) ख़ानख़ाना के बाग़ में उतरि सोय गया। सो (नींद में) गोली मुख में ते गिर परी। तब ख़ानख़ाना (ने) उठाय लाई। अतीत[1] जागि (कर) हेरन[2] लागा। तब ख़ानख़ाना (ने) गोली सौंपि दई। तब उह गुजराति (लौट) गया और गुरु सों मिलि (कर) कही—येक गोली जाती रही (और फिर) ताके सर्व समाचार कहे। सो गुरु ने चेला पठाय दिल्ली कूँ अर रस कूप का (?) की सीसी ख़ानख़ानाजी (के) पास भेजी। ताकी एक बूँद ते लाखन मण[3] तामा[4] सोना हो जाय। सो ख़ानख़ानाजू दरयाव[5] (के) पासि चेला सहतं[6] गए। सो सीसी जमुना में डारि दई और कही–मोकूँ (तो) ऐसा मारग बतावो जाते संसार ते छूट जावों। दौलत तो पहिले ही बहुत है।

(५)

ख़ानख़ाना कहता—आदमी बिना दग़ाबाज़ी काम का नहीं। पर दग़ाबाज़ी की ढाल करना जोग्य, तरवार करना नहीं[7]।

(६)

भक्तमाल के आधार पर रहीम-विषयक जो कथा आज कल की प्रकाशित पुस्तकों में मिलती है, उसमें भी थोड़ा-बहुत अंतर पाया जाता है। इस कारण सं० १८१४[8] के लगभग रचित वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल' की प्राचीन प्रति से यह कथा भी

---

१. अतिथि, यात्री। २. खोजना। ३. मन। ४. ताँबा, ताम्र। ५. नदी, यमुना। ६. सहित, साथ। ७. विश्वासघात से अपनी रक्षा करनी चाहिये, न कि दूसरे का अहित। ८. यह संवत् 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का विवरण' के आधार पर दिया गया है।

यहाँ उद्धृत की जाती है। भक्तमाल को नाभादासजी ने लिखा था और उनके शिष्य प्रियादासजी ने उसपर टीका की थी। वैष्णवदासजी इन्हीं प्रियादासजी के पुत्र थे, और उन्होंने 'भक्तमाल प्रसंग' नाम से भक्तमाल पर प्रियादासी टीका पर टीका रची है।

एक रहीम नाम पठान विलायति में रहे। ताने सुनी (कि) नाथजी[1] बहुत खबसूरिति हैं। तब वाने (मनमें) कही--खूबी विना मिठाई कौन काम की। यह विचारि फेरि (दर्शन की) चाहि भाई। रात दिना चल्योई आयो। जब (रहीम) दरवाजे पै आयो तब (चोबदार ने) रोक्यो (और कहा) भीतर मत जाय। तब (रहीम) बगदि[2] के बोल्यो—यह साहब[3] अरु यह बेसुरी[4]। चाह[5] क्यों दई (और जो) चाह दई तो जामा[6] मैलो क्यों दयो? (और यह दोहा कहा)

> हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
> खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥

तब ऐसे कहि के (रहीम) पर्वत[7] के नीचे जाय बैठे। तब गुसाईंजी[8] ने (यह सब) सुनि के थार को प्रसाद लै के रहीम पै गए। तब वाने (रहीम ने) कही बाबा तुम यहाँ क्यों आवते हो। तुम सों हमारा क्या काम है। मैं तो जिसन बुलाया हूँ[9] जिसे ही कहता हूँ। तब नाथजी (स्वयं) थार

---

१. वल्लभकुल संप्रदाय के आराध्यदेव जिनका मन्दिर अब उदयपुर राज्य में है, पहले गोवर्धन में था।

२. उलट कर। ३. साहिबी, बड़प्पन। ४. बेशहूरी, गँवारपन। ५. इच्छा, दर्शन-लालसा। ६. देह, नीच जाति में क्यों जन्म दिया। ७. गोवर्धन पर्वत। ८. गो० श्रीविट्ठलनाथजी। ९. जिसने मुझे बुलाया है।

लाए। (परन्तु) तब वाने (रहीम ने) पीठ फेरि लई। तापै (यह) दोहा (कह्यो)—

> खिंचे चढ़त ढीले ढरत, अहो कौन यह प्रीति।
> आजि कालि मोहन गही, बंस दिए की रीति॥

यह विचारि के (रहीम ने) पीठ दई। तब (श्रीनाथजी) थारि धरि के चले गए। तब यह पीछे पछताय्यो "मैं ने बुरी करी। वाकों (श्रीनाथजी को) तो मोसे बहुत आसिक हैं मोको ऐसो मासूक कहाँ। फेरि कहा ह्वै है।" तब विचार (किया कि) अब (तो) दिन कटई करे (केवल) बाकी बातन सों।

तापे (केवल बातों से कैसे दिन कटे) दृष्टांत—

एक बैरागी जैं[1] आयो। दूसरे (बैरागी) पूछै—तेने कहा खायो न्योते में। वाने सब बताय दियो पूरी, बूरो, लडुवा अरु दही। तब वह बोल्यो फेरि कहो (उसने) फेरि पाठ कीनो। तब वह (फिर) बोल्यो-'फेरि कहो'। (बैरागी ने) कही रे बातन सूँ तो पेट नाहिं भरे। तब वह बोल्यो—दिन तो कटे कहै[2]।

सो अब वह दिन कटई करे है—

(श्रीनाथजी के) आइबे[3] की छवि कहे हैं—

> छबि आवन मोहन लाल की।
> काछे काछनि कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की।
> बंक तिलक केसर को कीने, दुति मानो बिधु बाल की॥

---

१. भोजन करना। २. बातों से दिन किस तरह कट सकता है, इसको व्यक्त करने के हेतु प्रसंगवश यह दृष्टांत दिया है। भक्तमाल-प्रसंग में इसी प्रकार की टीका है। ३. प्रकट होकर दर्शन देने की छवि का बर्णन रहीम ने निम्न-लिखित पदों में किया है।

बिसरत नाहिं सखी मो मन ते, चितवनि नैन बिसाल की।
नीकी हँसनि अधर सधरनि की, छबि लोनी सुमन गुलाल की॥
जल सो डारि दियो पुरइनि पै, डोलनि मुकता माल की।
यह सरूप निरखै सोई जाने, या रहीम के हाल की॥

कमल दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं मदनमोहन की, मंद-मंद मुसकानि॥
दसननि की दुति चपला हू ते, चारु चपल चमकानि।
बसुधा की बस करी मधुरता, सुधापगी बतरानि॥
चढ़ी रहै चित हर बिसाल की, मुक्त माल लहरानि।
नृत्य समय पीताम्बर की वह, फहरि फहरि-फहरानि॥
अनुदिन श्रीबृन्दाबन बृज में, आवन जावन जानि।
छबि रहीम चित तें न टरति है, सकल श्याम की बानि॥

× × × × ×

जिहिं रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही कथा अब कौन॥
मोहन छबि नैननि बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सहाय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय॥

---

(७)

रहीम की दानशीलताकी प्रशंसामें गंगने निम्नलिखित दोहा लिख भेजाः—

सीखे कहाँ नवाबजू, ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने अत्यंत विनय और निरभिमानता दिखाकर उत्तर दिया—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं, याते नीचे नैन॥

रहीम ने एक छप्पय पर प्रसन्न होकर गंग को छत्तीस लाख रुपये दिये थे। ऐसा लेख मिलता है।

(८)

एक दिन कोई दरिद्र ब्राह्मण भूख प्यास का मारा मुसलमानों को कोस रहा था। रहीम ने उसकी बातें सुन लीं और कहा कि लोगों पर दया रखो। ब्राह्मण यह बात सुन कर प्रसन्न हो गया। और तो उसके पास कुछ था नहीं, अपनी फटी पुरानी पगड़ी उतारकर रहीम को दे दी। रहीम ने उसे सहर्ष ले ली और अपने सिर पर बाँध ली और ब्राह्मण को बहुत सा रुपया देकर विदा किया।

(९)

एक साहूकार की स्त्री रहीम पर मोहित हो गई और उसको बुला भेजा। रहीम ने बुलाने का कारण पूछा तो स्त्री ने कहा कि अपना सा बेटा दो। रहीम उसका भाव समझ गये और बोले कि मेरा सा तो मैं ही हूं और अब मैं तेरा बेटा हूं। यह कहकर रहीम ने अपना सिर उसकी गोद में रख दिया। स्त्री लज्जित हो गई और परस्पर मां बेटे का सा संबंध हो गया।

(१०)

एक दिन मुल्ला नजीरी ने रहीम से कहा कि मैंने एक लाख रुपये का ढेर नहीं देखा। रहीम की आज्ञा से एक लाख का ढेर लगाया गया। मुल्ला ने कहा "खुदा का शुक्र है कि नवाब की बदौलत इतना रुपया देखा"। रहीमने कहा "सब मुल्ला को दे दो कि फिर खुदा का शुक्र करे।"

कई बार रहीम ने सोने से अपना तुलादान कर कवियों को अशर्फियां बटवाईं थीं।

(११)

ख़ानख़ाना और गोस्वामी तुलसीदासजी में परस्पर बड़ा स्नेह था। एक निर्धन ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह की बड़ी चिन्ता थी। पास एक पैसा भी नहीं था। गोस्वामीजी के पास जाकर वह अपना दुःख सुनाने लगा। तुलसीदास-जीने निम्नलिखत पंक्ति लिख दी और ख़ानख़ाना के पास उस ब्राह्मण के हाथ भेज दीः—

सुरतिय, नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।

ख़ानख़ाना ने ब्राह्मण को बहुत धन दिया और गोस्वामी जी को उसी के हाथ दोहे की पूर्तिकर उत्तर भेजा—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

ख़ानख़ाना की इस मधुर मीठी हाजिर जवाबी में यह भी विशेषता है कि तुलसीदासजी की माता का नाम हुलसी था।

(१२)

ख़ानख़ानाके मुन्शी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिनों की छुट्टी ली। छुट्टी बीत गई पर मुन्शीजी लौट कर न आये। आये तो बहुत दिनों बाद। घर से चलते समय बड़े चिन्तित थे कि मालिक क्या कहेगा। स्त्री ने चिन्ता का कारण पूछा तो मुन्शीजीने वह सुनाया। स्त्री चतुर थी। एक पद लिखकर पति को दे दिया कि ख़ानख़ाना को दे दें। वह निम्नलिखित बरवै थाः—

प्रेम प्रीति के बिरवा, चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय॥

ख़ानख़ाना ने जब यह पढ़ा तो क्रुद्ध होना तो अलग रहा इस पद पर रीझ गए और बरवा छन्द में स्वयं कविता करनी ठानी। इसी का फल-स्वरूप उनका बरवै नायकाभेद और बरवा छन्द की अन्य कविताएँ हैं।

(१३)

ख़ानख़ाना अपनी पदवी तथा जागीर बादशाह को अप्रसन्न कर खो बैठे थे। बादशाह फिर प्रसन्न हुए और पदवी जागीर पुनः देते हुए एक लाख रुपया और भी रहीम को दिया। तब ख़ानख़ाना ने अपनी अँगूठी में यह शेर खुदवा लिया था —

मरा लुत्फ़े जहाँगीरी ज़े ताईं दाते रब्बानी।
दो बारः जिन्दगी दादः दो बारः ख़ानख़ानानी॥

अर्थात् जहाँगीर की मेहरबानी ने खुदा की मदद से मुझको जिन्दगी और ख़ानख़ाना की पदवी दोबारा दी है।

(१४)

पं० जगन्नाथ त्रिशूली ने एक दिन रहीम को यह श्लोक सुनाया —

प्राप्य चलानधिकारान्, शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन॥

अर्थात् जिसने राजा का अधिकार पाकर शत्रुओं का अपकार, मित्रों का उपकार, तथा बंधुवर्गों का सत्कार न किया तो उसने क्या किया?

ख़ानख़ाना ने हँसकर उत्तर दिया—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन॥

जिसने राजा का अधिकार पाकर शत्रु, मित्र तथा बन्धु-वर्गों का उपकार नहीं किया तो उसने क्या किया ?

ख़ानख़ाना के उदार हृदय का कैसा अच्छा भाव-प्रदर्शन है !

(१५)

याचकों को कोरा जवाब देना रहीम को नहीं भाता था। अपनी अवस्था एकसी रहने न पाई। जागीर छिन जाने पर पास कुछ रहा नहीं था। याचक तो फिर भी नहीं मानते थे। एक ने आकर घेरा तो रहीम ने उसे रीवाँ-नरेश के पास सिफारिश में एक दोहा लिखकर भेज दिया। याचक की सहायता कराने के लिए निस्संकोच भावसे स्वयं दीन भिखारी बन गये। दोहा लिखा —

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥

रीवां-नरेश ने ऐसी सिफ़ारिश पर एक लाख रुपया दिया। दोहे का मूल्य भी तो इससे कम न था !

(१६)

चित्तौड़ के महाराणा अमरसिंह जहाँगीर से युद्ध में परास्त होकर जगलों में घूमते फिरते थे। एक दिन घबरा कर रहीम को उन्होंने निम्नलिखित दोहे भेजे—

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खानखाना ने, बनचर हुआ फिरंत॥
तुंबरा-सु दिल्ली गई, राठौड़ां कनवज्ज।
राण पयं पै खान ने, वह दिन दीसे अज्ज॥

ख़ानख़ाना ने उत्साह-वर्द्धन के लिए उत्तर लिख भेजा—

धर रहसी रहसी धरम, खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरै, नहचौ राखो राण॥

हुआ भी ऐसा ही।

(१७)

महाकवि केशवदास ने आमेर-नरेश मानसिंह को अपनी रचित जहाँगीरचंद्रिका में अकबर के दरबार का सिंह बताया है, यथा—

साहिबी के रखवार शोभिजै सभा में दोऊ ।
खानखाना मानसिंह सिंह अकबर के ॥

इन्हीं मानसिंह की वीरता, दक्षता तथा राजनीति-कौशल से चकित होकर रहीम ने उनकी अनन्वयालंकारपूर्ण इस प्रकार प्रशंसा की है—

हरि दश हैं हर एकदश, रवि द्वादश बिधि आन ।
तोसों तुही जहान में, मेरु महीपत मान ॥

(१८)

रहीम की गो० तुलसीदासजी से घनिष्ठता थी। कहा जाता है कि इस घनिष्ठता के कारण तथा रहीम के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाने के हेतु गोस्वामीजी ने स्वरचित दोहावली का अन्तिम दोहा रहीम रचित उद्धृत किया है। वह दोहा इस प्रकार है:-

मनि मानिक महँगे किये, सँहगे तृन जल नाज ।
रहिमन याते कहत हैं, राम गरीबनिवाज ॥

बा० बेनीमाधवदास-कृत गुसाईं-चरित्र के आधार पर यह भी निश्चित है कि रहीम ने कुछ बरवे तुलसीदासजीके पास भेजकर 'बरवे रामायण' लिखवाई।

(१९)

तानसेन ने कान्हरा राग की धुन पर एक नवीन राग को अकबर के दरबार में गा-गा कर उसे दरबारी (कान्हरा)

नाम से प्रसिद्ध किया। एक दिन उन्होंने इसी राग में सूरदास-जी का यह पद गाया:—

जसुदा बार बार यों भाखे।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो, चलत गुपालहिं राखे।

अकबर ने इसका अर्थ पूँछा, तब तानसेनने कहा-"यशोदा बारम्बार यों कहती है कि व्रज में हमारा ऐसा कौन हितू है जो गोपाल को मथुरा जाने से रोके।"

शेख़ फ़ैज़ी ने कहा-"नहीं। 'बारबार' का अर्थ रोना है। अर्थात् यशुदा रो-रो कर यह कहती है..."

बीरबलने कहा—"बार बार का अर्थ द्वार द्वार है। यशोदा द्वार-द्वार यह कहती फिरती है..."

एक ज्योतिषी ने कहा—"बार का अर्थ दिन है। यशोदा प्रत्येक दिन यह कहती रहती है..."

अंत में रहीम ने कहा—"बार बार का अर्थ बाल बाल अर्थात रोम रोम है। यशोदा का रोम रोम यह कहता है.."

अन्त में अकबर ने कहा कि सब ने बार बार के अर्थ भिन्न-भिन्न किये, इसका क्या कारण? ख़ानख़ाना ने विनय-पूर्वक कहा—"इतने अर्थ एक शब्द के हो सकें यह कवि की चतुराई है। प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी दशा तथा चित्तवृत्ति के अनुसार अर्थ करता है। वास्तविक अर्थ वही है जो मैंने किया है। तानसेन गवैया है, इसको आपके दरबारमें दरबारी बार बार गानी पड़ती है और ध्रुव अन्तरा आदि बार बार अलापना पड़ता है, इस कारण इन्होंने बार बार का अर्थ अनेक बार किया। फ़ैज़ी शायर सिवाय रोने-धोने के और क्या जाने। बीरबल ब्राह्मण ठहरे। घर घर घूमते हैं। इस कारण इन्होंने द्वार द्वार अर्थ किया। रहा ज्योतिषी सो सिवाय तिथि वार नक्षत्र के और क्या जाने।"

रहीम के संबंध में हिन्दी कवियों की उक्तिया

किंवदन्तियों का आधार सत्य हो अथवा न हो, परन्तु उनका एकत्र कर प्रकाशित करना उचित ही है। इसी प्रकार कवियों ने जो रहीम की प्रशंसा में कविता रची है, अथवा प्रसंगवश उनको रचने का अवसर मिला, उसका भी संग्रह यहाँ-कर दिया जाता है। कोई-कोई प्रसंग भी जानने योग्य है। इनके एकत्र करने में परिश्रम अधिक करना पड़ा है। पाठकों को रुचिकर हों तो अच्छा है। बहुत से कवि रहीम के आश्रित वा उनसे सम्मान पाते थे। इसी कारण उनकी प्रशंसा में इतनी कविता रची गई है। रहीम को लोक-प्रियता, दानशीलता और कविताप्रेम का सच्चा उदाहरण कवियों की उक्तियों से भली प्रकार विदित होता है—

१. केशवदास

महाकवि केशवदास का रहीम से घनिष्ट परिचय था। उन्होंने सं० १६६९ में "जहाँगीर-चंद्रिका" नामक एक पुस्तक रची है। यह पुस्तक रहीम के पुत्र एलच बहादुर के लिये रची गई थी। इस पुस्तक में अधिकांश में जहांगीर के दरबार का वर्णन है। प्रसंग-वश उसमें रहीम के विषय में भी निम्न-लिखित छंद है—

बइरम खाँ पुत्र सो हुमायूँ को साहि सिंधु,
सातो सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की।
शील को सुमेर, सुद्ध साँच को समुद्र, रण-
रुद्रगति "केसोदास" पाई हरिहर की॥
पावक प्रताप जाहि जारि-जारी प्रक...
......साहिबी समूल मूल गर की १

प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्पबेलि,
पाल लीनी पातसाही साहि अकबर की ॥

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।
भयो खानखाना प्रकट, जहाँगीर तनु-त्रान।

साहिजू की साहिबी को रक्षक अनंत गति,
कीनो एक भगवंत हनुवंत बीर सों।
जाको जस "केसौदास" भूतल के आसपास,
सोहत छबीलो क्षीर-सागर के क्षीर सों ॥
अमित उदार अति पावन बिचारि चारु,
जहाँ-तहाँ आदरियो गंगाजी के नीर सों।
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को।
खानखाना एक रामचंद्रजू के तीर सों ॥

इसी पुस्तक में महाकवि केशवदास ने 'उद्यम' तथा 'भाग्य' की परस्पर वार्तालाप में सभा के सभी सरदारों का वर्णन किया है। 'उद्यम' तथा 'भाग्य' के रहीम-संबंधी प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

उद्यम—

सभा सरोवर हंस से, शोभित देव समान।
वे दोऊ नृप कौन हैं, कहिए भाग्य प्रमान ॥

भाग्य—

जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीने भक्खरी जे,
खानि खुरासानि बाँधि, खरियो पर के।
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में,
मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के ॥
दक्षिण के दक्ष दीह दंती ज्यों बिडारे बीर,
"केसौदास" अनायास कीने घर-घर के।
साहिबी के रखवार शोभिजें सभा में दोऊ,
खानखाना मानसिंह सिंह अकबर के ॥

२. जाड़ा

महडू शाखा का जाड़ा नाम का एक चारण था। उसका वास्तविक नाम आसकरन था। परंतु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग 'जाड़ा' कहा करते थे। उसने रहीम की प्रशंसा में निम्नलिखित चार दोहे कहे हैं—

खानखाना नवाब हो!, मोहिं अचंभो एह।
मायो[1] किमि गिरि मेरुमन, साढ़ तिहस्सी[2] देह॥
खानखाना नबाब रे, खाँड़े आग खिवंत[3]।
जलवाला नर प्राजलै[4], तृणवाला जीवंत[5]॥
खानखाना नवाबरी, आदम गीरी[6] धन्न।
मह ठकुराई मेरु-गिरि, मनी न राई मन्न[7]॥
खानखाना नवागरा, अड़िया भुज ब्रह्मंड[8]।
पूंठे तो है चंडिपुर[10], धार तले नवखंड॥

इन दोहों पर प्रसन्न होकर रहीम ने जाड़ा कवि को प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपये देना चाहा, परंतु कवि ने विनय-पूर्वक भेंट को अस्वीकार कर दिया, और अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम के द्वारा बादशाह से जहाजपुर का परगना दिलवाया जो परगना पहले मेवाड़प्रांत का ही एक भाग था।

रहीम ने भी जाड़ा के दोहों का जवाब इस प्रकार दिया था—

---

१. समाया। २. साढ़े तीन हाथ की। ३. तेरे खड्ग से अग्नि की वर्षा होती है। ४. पानीवाले अर्थात् पराक्रमी पुरुष जल जाते हैं। ५. दाँतों में तृण धारण करनेवाले दीन पुरुष जीवित रहते हैं। ६. उदारता। ७. मेरु गिरि जैसी ठकुराई भी अपने मन में नहीं मानी। ८. भुजाओं के बल पर ब्रह्मांड डटा हुआ है। ९. पीठ पर। १०. दिल्ली।

धर[1] जड्डी अंबर[2] जड़ा, जड्डा महड्डू[3] जोय।
जड्डा नाम अलाहदों, और न जड्डा कोय॥

३. मंडन

संवत् १८१२ की लिखी हुई 'जस-कवित्त' की प्रति में मंडन कवि का एक छंद रहीम की प्रशंसा का दिया हुआ है। वह इस प्रकार है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
ये तेरे कान गुन आपनो धरत हैं।
तूंतो खग्ग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तोपै कर नेक न डरत हैं॥
"मंडन सुकवि" तू चढ़त नवखंडन पै,
यह भुज-दण्ड तेरे चढ़िए रहत हैं।
ओहती अटल खान साहब तुरक मान,
तेरी या कमान तोसों तेहु सों करत हैं॥

४. प्रसिद्ध

'शिवसिंह-सरोज' में 'प्रसिद्ध' कवि का ख़ानख़ाना के यहाँ होना लिखा है। उसी पुस्तक में इस कवि का यह छंद भी दिया है—

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि
सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी-बाल हैं।
कटि लचकत, बार-भार ना सँभारि जात,
परी विकराल जहँ सघन तमाल हैं॥
कवि "परिसिद्ध" तहाँ खगन खिजायो आनि,
जल भरि-भरि लेती दृगन बिसाल हैं।

---

१. पृथ्वी, धरा। २. आकाश। ३. कवि की शाखा। ४. ईश्वर।

वेनी खैंचे मोर, सीसफूल को चकोर खैंचे,
मुकता की माल खैंचि खैंचत मराल हैं ॥

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने भी स्वरचित 'ख़ानख़ाना-नामा' में इसी कवि का एक छंद और दिया है। वह इस प्रकार है—

सात दीप, सात सिंधु थरक-थरक करै,
जाके डर टूटत अखूट गाढ़ राना के।
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँडि,
एक-एक रोम झर पड़े हनुमाना के ॥
धरनि धसक धस, मुसक धसक गई,
भनत "प्रसिद्ध" खंभ डाले खुरसाना के।
सेस फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के ॥

हमारे पुस्तकालय में यह छंद और है—

जलद चरन संचरहि सबर सोहै समत्थ गति।
रुचिर रंग उत्तंग जंग मंडहिं विचित्र अति ॥
बैराम सुवन नित बकसि बकसि हय देत संगिनन।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छंडहिं न एक छिन ॥
थरहरहिं, पलट्टहिं उच्छलहिं, नच्चत धावत तुरंग इमि।
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि, नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ॥

५. गंग

हमारे पुस्तकालय में गंग कवि के कवित्तों का एक अच्छा संग्रह है। उसमें रहीम की प्रशंसा के अनेक कवित्त हैं। गंग ने वीर-रसात्मक छंद विशेषतः रहीम के लिये ही लिखे हैं।

तृतीय त्रैवार्षिक खोज की रिपोर्ट में गंग कवि-कृत 'खान-

खाना कवित्त' नामक ग्रंथ की सूचना दी है। परन्तु वह हमारे देखने में नहीं आया। हमारे पास जो छंद हैं, वे यहां दिये जाते हैं।

बांधिबे कौं अंजलि, विलोकिबे कौं काल ढिग,
राखिबे कौं पास जिय, मारिबे कौं रोस है।
जारिबे कौं तन मन, भरिबे कौं हियो आँखें,
धरिबे कौं पग मग, गनिबे कौं कोस है।
खाइबे कौं सौंहें, भौंहें चढ़िबे-उतारिबे कौं,
सुनिबे कौं प्रानघात किए अपसोस है।
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी-बधू,
लीबे कौं उसास मुख दीबे ही कौं दोस है।

× × ×

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे देस-पति धुनि सुनत निसान की।
"गंग" कहै तिनहुँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानो सुधि भूली खान-पान की॥
तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरनि,
तिनहूं की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी॥

× × ×

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की।
मछम को ठाठ ठट्यो प्रलय सों पलट्यो "गंग",
खुँरासान अस्पहान लगे एक आना की॥
जीवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अबट बहाना की।

तौसेखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने खाने खबर नवाब खानखाना की ॥

× × ×

नवल नवाब खानखानाजी रिसाने रन,
कीने अरि जेर समसेर सर सरजे ।
मांस के पहाड़ सम सानु करि राखे शत्रु,
कीने घमसान भूमि आसमान लरजे ॥
सोणित की धार सों छुअत चंद्रमा-सों धार,
भारी भयो भेद रुद्रन को हाहा बरजे ।
न्यारो बोल बोलत कपाल, मुंडमाल न्यारी,
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे ॥

× × ×

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी ।
कहै कवि 'गंग' तहाँ भारी सूर-बीरनि के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी ॥
मच्यो घमसान, तहाँ तोप तीर बान चले,
मंडि बलवान किरवान कोप गहकी ।
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥

× × ×

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन ।
अहिफनि-मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन ॥
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति ।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहैं न करैं रति ॥

खल भलित सेस कबि 'गंग' भनि, अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन, जिदिन कोप करि तँग कस्यो ॥[1]

× × ×

कश्यप के तरनि औ तरनि के करन जैसे,
उदधि के इंदु जैसे, भए यों जिजाना के ।
दशरथ के राम और श्याम के समर जैसे,
ईश के गनेश औ कमलपत्र आना के ।
सिंधु के ज्यों सुरतरु, पवन के ज्यों हनुमान,
चंद के ज्यों बुध अनिरुद्ध सिंह बाना के ।
तैसई सपूत खान बैरम के खानखाना,
वैसेई दाराबखां[2] सपूत खानखाना के ।

× × ×

नवल नवाब खानखानाजू तिहारे डर,
परी है खलक खैल भैल जहूं-तहूं जू ।
राजन की रजधानी डोली फिरें बन बन,
नैंठन की दैठें बैठे भरे बेटी बहू जू ॥
चहूं गिरि राहें परी समुद्र अथाहें अब,
कहे कवि 'गंग' चक्र बह्री ओर चहूं जू ।
भूमि चली शेष धरि, शेष चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कौल धरि, कौल चल्यो कहूं जू ।

× × ×

ठठा मार्यो खानाखाना दच्छन अजीम कोका,
इसकखां मारि मारे कसमीर ठौर के ।

---

१. इस छप्पय पर रहीम ने गंग को छत्तीस लाख रुपया भेंट किया था । २. दाराबखां रहीम का पुत्र था और दक्षिण की लड़ाइयों में साथ रहा था ।

साहि के हरामखोर मारे साह कुली खान,
कहां लौं गनाऊँ गुन उमरावन और के ॥
रुस्तम नवाब मारि बालाघाट वार कियो,
फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के ।
बास्ती को काम छह हजार असवार जोरे,
जैनखाँ जुनारदार[1] मारे इकनौर के ।

× × ×

... ... वैन तद्धैन अदच्छन ।
नगनि जात नागिनि पनाग नायक उरिद्दग्गन ।
इक बरनि सरबरनि तीर तरवारिन पत पर ।
हाई हाई हा, हूँधि हुलिल गाहे तिलंग नर ।
खानानखान बैराम सुवन, जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय ।
कलमलि सकल दक्खिन मुलक, पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥

× × ×

बैरम को खानखाना विरच्यो बिराने देस,
दक्षिण में फ़ौज मारी खग्ग सुख जो परी ।
माते-माते हाथिन के हलका हलक डारे,
मानों महा मारुत झकोर डारी झोपरी ।
लोहू के अलेलें 'गंग' गिरजा गलेलें देत,
चोंथ-चोंथ खात गीध चर्बे मुख चोपरी ।
तियनि-समेत प्रेत हाके देत बीर-खेत,
खखल-खखल हँसे खलन की खोपरी ।

× × ×

---

१. 'शिवसिंह-सरोज' में लिखा है कि "इकनौर जिला इटावा पर जैनखाँ का अत्याचार होने पर गंग के पुत्र ने जहाँगीर के पास एक अर्जी भेजी थी, जिसके एक कवित्त का अंतिम अंश "जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के" था। परंतु इस कविता से यह बात असिद्ध सिद्ध होती है।

कुकुभ कुंभि संकुलहि, गहरि हिय गिरि हिय फस्यव ।
दर-दरेर कुव्बेर, बेर जिमि मेरु पलस्यव ॥
सरस कमल संपुत्य सूर आथवति पइठ्यव ।
गिरि गगस्मि तिय गम्म, कंठ कामिनिय उचित्यव ॥
भनि 'गंग' अदिव्वय दव्यदिय, दव्विय कर दव्विय गयो ।
खानानखान बैरम्म सुवन, जादिन दखल दक्खिन दयो ॥

× × ×

राजे भाजे राज छोड़ि, रन छोड़ि राजपूत,
राउति छोड़ि राउत, रनाई छोड़ि राना जू ।
कहे कवि 'गंग' इत समुद्र के चहूँ कूल,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू ॥
पच्छिम पुरतगाल काश्मीर अबताल,
खख्खर को देस बाढ़्यो भख्खर भगाना जू ।
रूम-शाम लोम-सोम, बलक-बदाऊँ सान,
खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू ॥

× × ×

गंग गोंछ मौंछे जमुन, अधरन सरसुती राग ।
प्रकट खानखाना भयो, कामद बदन प्रयाग ।

× × ×

धमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित,
चमक किरान मुल्तान थहराना जू ।
मारु मरदान काम रुके करवान आदि,
मेवार के रानहि दवान आनमाना जू ॥
पुर्तगाल पछ माध पलटान उत्तराध,
गुजरात-ईस अरु दच्छिन दबाना जू ।
अरेवान हवसान हट्टेलान रूम सान,
खेल-भेल खुरासान चढ़े खानखाना जू ॥

६. संत

सेर सम सील सम धीरज सुमेर सम,
सेर सम साहेब जमाल सरसाना था ।
करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि,
ताले बन्द मरद दरदमंद दाना था ।
दरबार दरस-परस दरवेसन कौ
तालिब-तलब कुल आलम बखाना था ।
गाहक गुनी के, सुख चाहक दुनी के बीच ।
'संत' कबि दान को खजाना खानखाना था* ।

७. हरिनाथ

हरिनाथ-कवि का भी एक छन्द रहीम की प्रशंसा का मिलता है। यह हरिनाथ कौन हैं, सो ठीक-ठीक पता नहीं चलता । परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि यह वही हरिनाथ हैं, जिन्होंने बांधव-नरेश नेजाराम बघेले से एक दोहे पर एक लाख रुपए पाए थे, और आमेर के राजा मानसिंह से दो दोहों पर दो लाख । पर मार्ग में एक नागर-पुत्र को एक दोहे पर जो कुछ मिला, सब दे डाला । यह रहीम के समकालीन थे, और बड़े-बड़े राजा-महाराजों के यहां इनकी पहुंच भी थी । इनके पिता महापात्र नरहरि अकबर के दरबार में ही थे । इन कारणों से हमें रहीम की प्रशंसा करनेवाले हरिनाथ नरहरि के पुत्र ही मालूम पड़ते हैं । उनका कवित्त इस प्रकार है—

---

* नयना मति रे रसना निज गुन लीन ।
कर तू पिय झिझकारे, भली न कीन ।।

इस रहीम-रचित बरवै का भाव लेकर संत कवि ने एक सवैया भी रचा है । (देखो भूमिका पृ० २५-२६)

बैरम के तनय खानखानाजू के अनुदिन,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं ।
कहै 'हरिनाथ' सातों द्वीप कौ दिपति करि,
जोहखंड करताल ताल सों बजाए हैं ।।
एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी,
पूजत नए को भास तातैं भेद पाए हैं ।
अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं ।।

८. अलाकुलि कवि

लंका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट-कूट,
हाथी घोड़े-ऊँट एते पाए ते खजीने हैं ।
'अलाकुली' कवि की कुबेर ते मिताई कीनी,
अनतुले अनमाए नग औ नगीने हैं ॥
पाई है तैं खाँन लक्ष भई पहिचान भूल,
रह्यो है जहाँ नए समान कहाँ कीने हैं ।
पारस ते पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं,
समुद्र हू ते लायो किधौं खानखाना दीने हैं ॥

९. तारा कवि

जोरावर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि जोरि रहियतु है ।
है न को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखाना को लहे ते लहियतु है ॥
तन-मन डारे बाजी द्वै तन सँभारे जात,
और अधिकाई कहौ कासों कहियतु है ।
पौन की बड़ाई बरनत सब 'तारा कवि'
पूरो न परत याते पौन कहियतु है ॥

१०. मुकुंद *

कमठ-पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन ।
फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिगत दीप गन ॥
सप्त दीप पर दीप एक जंबू जग लिखिय ।
कवि मुकुंद तहँ भरतखंड उप्परहिं बिसिखिय ॥
खानानखान बैरम तनय तिंहि पर तुव भुज कल्पतरु ।
जगमगहिं खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग अग्ग स्त्रामित्ति बरु ॥

११. अज्ञात

इसी विषय के कुछ छुन्द और मिले हैं; परन्तु इनके रचयिता का नाम नहीं ज्ञात हो सका । भाषा-साम्य से कुछ छंद गंग के प्रतीत होते हैं, परन्तु नाम नहीं है । अज्ञात कवियों के छंद निम्नलिखित हैं—

दक्खिन को जूम खानखानाजू तिहारो छनि,
होत है अचंभो राजा राय उमराइ के ।
एक दिन एक रात और दिन आथए लौं,
आए जो मुकाबिले को गये ना विराइके ॥
बासर के जूमे ते छुमार ह्वै-ह्वै गिरत हैं,
भेदें-भेदें बिवडल ते मारे हैं लराइ के ।
जामनी के जूने सूर सूरज को पैड़ों देखें,
भोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के ॥

× × ×

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
धरक्यो खँधारी खान पानी ना हलक में ।

---

* माधुरी पौष संवत् १९८५ के आधार पर ।

छांड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजवक उजर कै गयो है पलक में ॥
पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दई,
खानखाना ध्याये ते अवाज है खलक में ।
पिय भाजे तिय छाँड़ि, तिया करे पीउ-पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बलक में ॥

× × ×

मदन-रूप-तन तबल बीर बारुन गल गज्जह ।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जह ॥
बहु साहस उत्थयन फेर थप्पन समर्थ वर ।
सहनसाह सिरछत्र ताहि रक्खन समर्थ नर ॥
खानानखान बैरम-सुवन, चित्तसहर रस रत्तयो ।
धन-मद-जोबन-राज-मद, एकहि मद्दन मत्तयो ॥

× × ×

खानखान ना जाँचियों, जहां दालिद्र न जाय ।
कूप नीर अद्रे बिना, नीली धरा न पाय ॥
खानखान नबाब तें, वाही खग उल्लाल ।
मुदफर पड़ें न ऊठियो, जैसे अंबा डाल ॥
खानाखान नवाब तें, हत्त लगाए एम ।
मुदफर पड़ें न ऊठियो, गए जोबसी जेम ॥
खानखाना नवाब हो, तुम धुर खैंचनहार ।
सेरा सेती नहिं खिचे, इस दरगह का भार ॥

× × ×

काह रे करजदार झगरत बार-बार,
नैक दिल धीर धर जान इतबारी से ।

वेहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से ॥
सेवा खानखाना की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सूँ होत धनधारी से ।
अब घरी पल माँझ, पहर-द्वै-पहर माँझ,
आज-काल के हैरे···द्वै हजारी से ।।

× × ×

दिए के हुकुम आगे दिए, रहे जामिनी कै,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं ।
बखत के नाम नाम राखत जिहान माँहि,
धन के सबद धन-धन जे कहत हैं ।।
खानखानाजू की अब ऐसी बकसीस भई,
बाकी बकसीस अरु बखसीस हत हैं ।
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन में,
घोरा दिए घोरा सतरंज में रहत हैं ।

× × ×

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुखमानो है ।
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान-बान,
काहू की सिकार देखो बारुण बखानो है ॥
खानाखान की सिकार सिंधु पैके वार पार,
छंद-बंद-फंद खट बरन को ठानो है ।
अबही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कोन ही दिसा को पातशाह बाँध आनो है ॥

× × ×

शिवसिंहजीने लक्ष्मीनारायण नामक एक कविको रहीम के आश्रित लिखा है; किन्तु हमें उसका कोई छंद प्राप्त नहीं है।

रमई पाठक के पुत्र माथुर (चतुर्वेदी) कुलोत्पन्न बाण कवि ने 'कलि चरित्र' नामक पुस्तक रहीम की आज्ञा से लिखी है। जैसो इस छंद से स्पष्ट है।

संवत सोरह से चोहतरि, चैत्र चंद्र उजियारि।
आयसु पाय खानखाना को, तब कबिता अनुसारि॥

रहीम के पुत्र एलचबहादुर की भी प्रशंसा में 'अभिमन्यु' कवि ने एक छंद रचा है। उसे भी यहां दिया जाता है:—

जैसे मृगराज के छौना गजराज पै,
छोटे-छोटे धावन करत आय घाव है।
तैसे लरिकाई ही ते एलचबहादुर ने,
भारी फौज मारी मानों अंगद को पांव है॥
कहे 'अभिमन्यु' कुल दच्छनि तैं जेर करी,
और कोन देश जाय मूछों देत ताव है।
दादे ते सरस बाप, बाप ते सरस आप,
महाबली बैरम के बंस को सुभाव है॥

संपादन-सामग्री

१. रहिमनविलास-दोहों पर बा० राधाकृष्णदास रचित कुण्डलियाँ।
२. रहिमनविलास-सं० बा० व्रजरत्नदास।
३. रहिमन रत्नाकर-सं० पं० उमरावसिंह त्रिपाठी।
४. रहीम-सं० पंडित रामनरेश त्रिपाठी।
५. रहीम-कवितावली-सं० पं० सुरेन्द्रनाथ तिवारी।
६. रहिमन-चंद्रिका-सं० श्रीरामनाथलाल 'सुमन'।
७. बरवै नायिकाभेद-सं० पंडित नकछेदी तिवारी।
८. रहिमन शतक-सं० पंडित सूर्य्यनारायण दीक्षित।
९. रहिमनशतक-सं० लाला भगवानदीन।
१०. रहिमन शतक(दो भाग)-प्रका० बंबई भूषण यंत्रालय,मथुरा
११. रहिमन शतक-प्रका० ज्ञान भास्कर प्रेस, बाराबंकी।
१२. रहिमन शतक-प्रका० शारदा प्रेस कानपुर।
१३. खेट कौतुकम्-प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस।
१४. ख़ानख़ानानामा-ले० मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ।
१५. बरवै नायिकाभेद-असनी से प्राप्त पं० कृष्णविहारी मिश्र की प्रति (हस्तलिखित)
१६. कविता-कौमुदी-सं० पंडित रामनरेश त्रिपाठी।
१७. मिश्रबंधु विनोद-मिश्रबंधु।
१८. भक्तमाल-प्रियादासजी की टीका (हस्तलिखित)।
१९. भक्तमाल-प्रसंग-वैष्णवदास (हस्तलिखित)
२०. दोहासारसंग्रह-(हस्तलिखित) दाराशाह द्वारा संग्रहीत
२१. गुण गंजनामा- (,,)
२२. प्रबोध रससुधासागर-नवीन (हस्तलिखित)

२३. रतनहज़ारा-रसनिधि ।
२४. रहीमकृत बरवै नायिकाभेद-काशी नरेश की प्रति (हस्तलिखित)
२५. शिवसिंह-सरोज-शिवसिंह सेंगर ।
२६. तुलसी-ग्रन्थावली-प्रका० ना० प्र० सभा ।
२७. मतिराम-ग्रन्थावली-सं० पं० कृष्णविहारी मिश्र ।
२८. कबीर-वचनावली-मनोरंजन पुस्तकमाला ।
२९. वृन्द-सतसई ।
३०. सरस्वती-फरवरी १९२६
३१. माधुरी-वर्ष ३ खंड २ संख्या २
३२. रहीम और मतिराम-श्रीयुक्त निर्मल (मनोरमा, मई १९२५
३३. सम्मेलन-पत्रिका-भाग १० अंक १ तथा भाग १२ अंक १, २
३४. चकत्ता वंश की परंपरा-(हस्तलिखित)
३५. जस कवित्त- („)

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक पुस्तकें तथा रहीम के सम-कालीन कवियों के हस्तलिखित ग्रन्थ ।

इन पुस्तकों के लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति संपादक हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता है ।

नवाब खान खानाँ मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम

रहीम-रत्नावली

दोहावली

अच्युत-चरन-तरंगिनी, शिव-सिर-मालति-माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल ॥ १ ॥

अधम बचन ते को फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह ।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह ॥ २ ॥

अनकीन्हीं बातें करै, सोवत जागै जोय * ।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय ॥ ३ ॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर ।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥ ४ ॥

अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि ।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥ ५ ॥

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥ ६ ॥

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ ७ ॥

अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥ ८ ॥

---

* पाठा-जानि अनीतिहिं जो करै, जागत ही रहि सोइ ।

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम-आतुरी नारि ॥ ९ ॥

असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गए, पारासर के नाज ॥१०॥

आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिँ।
जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माँहिँ ॥११॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल*।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़† बबूल ॥१२॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु-सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामे बरै बरेह ॥१३॥

उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥१४॥

ऊगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एकही भाँति ॥१५॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय ॥१६॥

ए रहीम दर दर फिरहिँ, माँगि मधुकरी खाहिँ।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिँ ॥१७॥

ओछो काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होय‡।
ज्यों रहीम हनुमन्त कों, गिरधर कहे न कोय ॥१८॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥१९॥

---

* पाठा० मूल † पाठा० कूर।

‡ पाठा० थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान ।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥२०॥

अंतर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रगटै सोय ।
कै जिय जाने आपनो, जा सिर बीती होय ॥२१॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन ।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥२२॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥२३॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय ।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय ॥२४॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन * हजूर ।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर § ॥२५॥

करमहीन रहिमन लखो, धँस्यो बड़े घर चोर ।
चिन्तत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥२६॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति ¶ होय ।
तन-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय ॥२७॥

कहि रहीम जग मारियो, नैन-बान की चोट ।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन-कमल की ओट ॥२८॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात ।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥२९॥

कहि रहीम या जगत से, प्रीति गई दै टेरि ।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥३०॥

---

* पाठा०-गुनी । § पाठा०-यहि प्रकार हम कूर । ¶ पाठा०-निधि ।

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत ॥३१॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥३२॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥३३॥

कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय ॥३४॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय ॥३५॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर ॥३६॥

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ †।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥३७॥

काह करौं बैकुंठ लै, कल्पबृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम-बाँह ॥३८॥

काह कामरी पामड़ी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिले अनाज ॥३९॥

कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥४०॥

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर ॥४१॥

---

† पाठा०-रह्यो न काहू काम को, सेंत न कोऊ लेइ।

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥४२॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, * गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, † पर घर गए रहीम ॥४३॥

खरच बढ्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन ॥४४॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत § नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥४५॥

खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस-दिया की रीति ¶ ॥४६॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥४७॥

गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू पर-घर जात लजाय ॥४८॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर, और न कछू उपाव ॥४९॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥५०॥

गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि ॥५१॥

* पाठा०--जाय समानी उदधि में,

† पाठा०--काकी महिमा नहिं घटी,

§ पाठा०--भरिए।

¶ सं० १८१४ में रचित वैष्णवदास-कृत भक्तमाल प्रसंग में यह पाठ है

खिंचे चढ़त ढीले ढरत, अहो कौन यह प्रीति।
आजकाल मोहन गही, बंस दिये की रीति ॥

जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥६२॥

जिहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन ।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥६३॥

जे गरीब पर हित करैं,* ते रहीम बड़ लोग ।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग ॥६४॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि ।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥६५॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥६६॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय ।
ताको बुरो न मानिये, लैन कहाँ सूं जाय ॥६७॥

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह ।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥६८॥

जो अनुचित-कारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम ।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥६९॥

जो घरही में घुसि रहै, कदली सुपत सुडील ।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील ॥७०॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥७१॥

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥७२॥

---

* पाठा०, को आदरैं ।

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय ‡ ॥७३॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥७४॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय *।
प्यादे सो फ़रजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय † ॥७५॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्‌यो, गोबर्धन गोपाल ‡ ॥७६॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजिआरो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥७७॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥७८॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहि §।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं ॥७९॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट-ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट ॥८०॥

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँसु गारिबो खीस ॥८१॥

---

‡ पाठा०--तिहिं प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार ते, तौ रहीम बहि जाय॥

* पाठा० छोटो बढ़ै, बहुत करत उतपात।

† पाठा० तिरछो तिरछो जात।

‡ पाठा० तो कत मातहि दुख दियो, गिरवर धरि गोपाल।

§ जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि। पाठा०—तनुआ

जो रहीम होती कहुँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तो कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥८२॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥८३॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥८४॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥८५॥

तन रहीम है कर्मबस, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥८६॥

तबहीं लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥८७॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ॥८८॥

त * रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माहिं घुल जाय ॥८९॥

त * रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि वासर लाग्यो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर ॥९०॥

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥९१॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय ॥९२॥

---

* पाठा०, जिहिं

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं ।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं ॥९३॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु ।
भली विचारी दीनता, दीनबंधु से बंधु ॥९४॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥९५॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥९६॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर ।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर ॥९७॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि ।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥९८॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि ।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥९९॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरें, याते नीचे नैन ॥१००॥

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि ॥१०१॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँहि समात ॥१०२॥

धन दारा अरु सुतन सो, लगो रहे नित चित्त ।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त * ॥१०३॥

---

* पाठा०--मैं, रहत लगाए चित्त । क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥१०४॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत † पिआसो जाय ॥१०५॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह ।
जैसी परै सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह ॥१०६॥

धूर धरत नित सीस पै§, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज ॥१०७॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग ।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूखही लाग ॥१०८॥

नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि ।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥१०९॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥११०॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥१११॥

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥११२॥

पन्नगबेलि पतिव्रता, रिति सम सुनो सुजान ।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥११३॥

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥११४॥

---

† पाठा०--पील ।

§ पाठा०--गज रज ढूंढत गलिन में ।

पसरि पत्र झंपहि पितहिँ, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥११५॥

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन ‡ ॥११६॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥११७॥

पुरुष पूजैं देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पड़ो बैल को साथ ॥११८॥

प्रीतम * छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ¶ ॥११९॥

फरजी साह न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सो, प्यादो होत वजीर ‡ ॥१२०॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाय ॥१२१॥

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि † ॥१२२॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दांत द्वै काढ़ि ॥१२३॥

---

‡ पाठा०--ते, काज सरेगो कौन।

* पाठा० मोहन ¶ पाठा०--ज्यों, पथिक आय फिरि जाय॥

‡ पाठा०—रहिमन सीधी चाल सों, प्यादो होत वजीर।
फरजी मीर न ह्वै सके, टेढ़ी के तासीर॥

† पाठा०--अरज सुनत लरजै तुरत, गरज मिटाई आनि।
कहि रहीम का दिन हुती, हरि हाथी पहिचानि॥

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१२४॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरो मोल ॥१२५॥

बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनै धनी के जाइ।
घटै बढ़ै वाको कहा, भीख मांग जो खाइ ॥१२६॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥१२७॥

बाँकी चितवन चित गढ़ी, सूधी तो कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुःख, काढ़ि न सकत रहीम ॥१२८॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥१२९॥

बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भय भोर ॥१३०॥

भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥१३१॥

भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत ॥१३२॥

भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मँझधार में, जिनके सिर पर भार * ॥१३३॥

भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान †।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥१३४॥

---

* पाठा०--जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस ?
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥

† पाठा०--दही एक भगवान

भावी या उनमान की, पांडव बनहि रहीम ।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, डरु है संभु अजीम ॥१३५॥

भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम ।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥१३६॥

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥१३७॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥१३८॥

मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय ।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय † ॥१३९॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान ।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥१४०॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष ।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥१४१॥

मानसरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता-भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालक नहिं जोग* ॥१४२॥

मान सहित बिष खाय के, संभु भए जगदीस ।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस ॥१४३॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपुने ठौर ॥१४४॥

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम ।
तीन पैड़ बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥१४५॥

---

† पाठा०-फूल श्याम के उर लगे, फल श्यामा उर आय ॥
* पाठा०--बिपुल बलाकनि जोग

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१४६॥

मुकता कर, करपूर कर, चातक-जीवन जोय ¶ ।
येतो बड़ो रहीम जल, ब्याल-बदन बिष होय ‡ ॥१४७॥

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु, गुह मातंग ।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग ॥१४८॥

मूढ़मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेखि ।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि ॥१४९॥

मंदन के मरिहू गए, औगुन गुन न सराहि ।
ज्यों रहीम बाघहु बधे, मरहा ह्वै अधिकाहि ॥१५०॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत † सरिताल ।
रहिमन मानसरोवरहिं, मनसा करत मराल ॥१५१॥

यह न रहीम सराहिए, देन लेन की प्रीत ।
प्रानन बाजी राखिए, हारि होय कै जीत ॥१५२॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होतही होय ॥१५३॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय ।
चीता, चोर, कमान के, नए ते अवगुन होय ॥१५४॥

याते जान्यों मन भयो, जरि बरि भस्म बलाय ।
रहिमन जाहि लगाइए, सो रूखो ह्वै जाय ॥१५५॥

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु ।
ज्यों तिय कुच आपन गहे, आप बड़ाई आपु ॥१५६॥

¶ पाठा० चातक तृष हर सोय । ‡ पाठा० कुचल परे बिष होय ।

† पाठा०-तोयवंत (जल भरे)

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥१५७॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहिं भांति सों, अथवत ताही भाँति ॥१५८॥

रन, बन, व्याधि, बिपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥१५६॥

रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सैंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥१६०॥

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥१६१॥

रहिमन अपने * पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे, तोसों को † अनखाय ॥१६२॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखिअत सेंहुड़ कंज करीर ॥१६३॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥१६४॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ ॥१६५॥

रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥१६६॥

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पड़े पहार ॥१६७॥

---

* पाठा०--मैं या † पाठा० का काहू।

रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग ।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१६८॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटै स्वान के, दोउ भाँति विपरीत ॥१६९॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥१७०॥

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस ।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१७१॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक ।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥१७२॥

रहिमन कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ † ॥१७३॥

रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक ।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक ॥१७४॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार ।
जो पत-राखन-हार हैं, माखन-चाखन-हार ॥१७५॥

---

† पाठा०-[१] कहि रहीम या पेटने, दुहि विधि दीनी पीठ ।
भूखे भीख मँगावई, भरे डिगावे डीठ ॥
(हमारी प्राचीन लिपि)

[२] रहिमन पेटे सों कहें, क्यों न भई तुम पीठ ।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठ ॥
(शिवसिंह-सरोज)

[३] रहिमन भाखत पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
भूखे मान डिगावही, भरे बिगारत दीठ ॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥१७६॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥१७७॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ ॥१७८॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥१७९॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥१८०॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥१८१॥

रहिमन जगत-बड़ाइ की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, वैर करे तन हानि ॥१८२॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गथ * लेन ॥१८३॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय ॥१८४॥

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥१८५॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥१८६॥

* पाठा०--गढ़।

रहिमन जो तुम कहत हो, संगति ही गुन होय ।
बीच उखारी रमसरा, रस काहे ना होय ॥१८७॥

रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव ।
जो बासर को निसि कहै †, तौ कचपची दिखाव ॥१८८॥

रहिमन ठठरी * धूरि की, रही पवन ते पूरि ।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि की धूरि ॥१८९॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान ।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥१९०॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि ।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥१९१॥

रहिमन तुंम हमसों करी, करी करी जो तीर ।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुबीर ॥१९२॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय ।
नैन-बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय § ॥१९३॥

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुह स्याह ।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह ॥१९४॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिबे जोग ।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग ॥१९५॥

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज ।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नलराज ॥१९६॥

---

† पाठा०-जो नृप बासर निसि कहै ।

* पाठा०-गठरी ।

§ पाठा-धन्वन्तरि न बचाय ।

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि ।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥१९७॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय † ।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय ॥१९८॥

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम ।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥१९९॥

रहिमन निज मन की बिथा, मनही राखो गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥२००॥

रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न विपति सहाय ।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय ॥२०१॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारी कर गहे *, मद समुझै सब ताहि ॥२०२॥

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार ।
नीर चोरावति संपुटी, मारु सहत घरिआर ॥२०३॥

रहिमन पर-उपकार के, करत न यारी बीच ।
माँस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच ॥२०४॥

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥२०५॥

रहिमन पैड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल ।
बिछलत पाँव पिपीलि को, लोग लदावत बैल ॥२०६॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥२०७॥

---

† पाठा०-चटकाय ।

* पाठा०-कलारिन हाथ लखि ।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥२०८॥

रहिमन व्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय ।
पाँयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय ॥२०९॥

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२१०॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं ।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥२११॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम ।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥२१२॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात ।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात ॥२१३॥

रहिमन मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥२१४॥

रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मभाव * ।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव † ॥२१५॥

रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप ।
बलि मख माँगन को गए, धरि बावन को रूप ॥२१६॥

रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहि ।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाँहि ॥२१७॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात ॥२१८॥

---

* पाठा०-बिन बूझे मति जाव ।

† पाठा०-नहीं धरन को पाँव ॥

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर ।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर ॥२१९॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥२२०॥

रहिमन रजनी ही भली. पिय सों होय मिलाप ।
खरो दिवस किहि काम को, रहिबो आपुहि आप ॥२२१॥

रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं सील समूच ।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२२२॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥२२३॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥२२४॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय ।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय * ॥२२५॥

रहिमन रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस ।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥२२६॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि ।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२२७॥

रहिमन रीति सराहिये, जो घट गुन-सम होय ।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ॥२२८॥

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पिअतहू, साँप सहज धरि खाय ॥२२९॥

---

*पाठा०--कहि रहीम नहि खेत है, रह्यो विषय लपटाय ।
घास चरै पसु आपते, गुड़ लौंआए खाय ॥

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥२३०॥

रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक † में छार ॥२३१॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विषान ॥२३२॥

रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥२३३॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥२३४॥

रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिर मिलें, यहै जान अवतार ॥२३५॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागैं नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन ॥२३६॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपुने हाथ ॥२३७॥

राम-नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥२३८॥

राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥२३९॥

रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२४०॥

---

† पाठा०-छनिक।

रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा * लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम बिसाल ॥२४१॥

रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय ॥२४२॥

रौल बिगाड़े राज , मौल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल ॥२४३॥

लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु-स्थान ¶ ॥२४४॥

बरु रहीम कानन भलो, वास करिय फल भोग † ।
बंधु-मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ॥२४५॥

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥२४६॥

बिरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥२४७॥

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग ‡ ।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥२४८॥

सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइकै, को करि रहा मुकाम ॥२४९॥

सबको सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥२५०॥

सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सोई जगीरै खाय ॥२५१॥

* पाठा०-दूबा। ¶ पाठा०-मगहर-थान।
† पाठा०-असन करिय फल तोय।
‡ पाठा०-यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान ।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२५२॥

समय परे ओछे बचन, सब के सहे रहीम ।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥२५३॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात ।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात ॥२५४॥

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक ।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥२५५॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२५६॥

सर सूखे पच्छी उड़ैं, औरे सरन समाहिं ।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥२५७॥

स्वारथ रचत रहीम सब, औगुनहू जग माँहिं ।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ-कूबर-छाँहि ॥२५८॥

स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त ।
पूत परा घर जानिए. रहिमन तीन पवित्त ॥२५९॥

साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान ।
रहिमन साँचे सूर को बैरी करै बखान ॥२६०॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट ।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥२६१॥

संतत संपति जान के, सब को सब कुछ देत * ।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥२६२॥

---

* पाठा० •सपति संपतिवान को, सब कोऊ बसु देत ।

संपति भरम गँवाइकै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माँहिं ॥२६३॥

ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥२६४॥

ससि, सँकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥२६५॥

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक *।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥२६६॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥२६७॥

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात ॥२६८॥

होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदाचि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय ॥२६९॥

होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काजही, जैसे तार खजूर ॥२७०॥

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो लगे ॥२७१॥

रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥२७२॥

* पाठा०-नैन खुलत बे चूक।

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में ।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं ॥२७३॥

रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं ।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥२७४॥

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़े फिर क्यों तिरै ।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२७५॥

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु ।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥२७६॥

बिंदु भो सिंधु समान, को अचरज कासों कहै ।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आपतें ॥२७७॥

नगरशोभा

आदि रूप की परम दुति, घट घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ ॥ १ ॥

नैन तृप्ति कछु होत है, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयत, आदि रूप की काँति ॥ २ ॥

उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय ॥ ३ ॥

परजापति परमेश्वरी, गंगारूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान ॥ ४ ॥

रूप रंग रतिराज में, खतरानी इतरान।
मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान ॥ ५ ॥

पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन वहू, जे बिलसै तिहि संग ॥ ६ ॥

कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि हँसि मानक लाल।
कबहूँ चखते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल ॥ ७ ॥

जद्दपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ ॥ ८ ॥

कैथनि कथन न पारई, प्रेम कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनों, लिखै मैन की सैन ॥ ९ ॥

बरुनि बार लेखनि करै, मास काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिख नैन ते, पिय बाँचन को देइ ॥ १० ॥

चतुर चितैरनि चित हरै, चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ ॥ ११ ॥

पलक न टारै बदन ते, पलक न मारै नित्र।
नेक न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र ॥ १२ ॥

सुरँग बरन बरइन बनी, नैन खवाये पान।
निसदिन फेरैं पान ज्यों, विरही जन के प्रान ॥ १३ ॥

पानो पीरी अति बनी, चन्दन खौरे गात।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै ह्वै जात ॥ १४ ॥

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि ॥ १५ ॥

रहसनि बहसनि मन हरै, घोर घोर तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि ॥ १६ ॥

बनियाँइनँ बनि आइकै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुवे टारत बाट ॥ १७ ॥

गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँड़ी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात ॥ १८ ॥

रँगरेजनि के संग में, उठत अनंग-तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अंत के रंग ॥ १६ ॥

मारत नैन कुरंग तें, मो मन मार मरोर।
आपन अधर सुरंग तें, कामी काढ़तु बोर ॥ २० ॥

गति गरूर गयन्द जिमि, गोरे बरन गँवार।
जाके परसत पाइयै, धनवा की उनहार ॥ २१ ॥

घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बाँधि कै, लेजू लै ज्यों जाइ ॥ २२ ॥

भाटा बरन सु कौंजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग ॥ २३ ॥

हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियराति।
झूठे हू गारी सुनत, साचेहू ललचात॥ २४॥

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही हर जिय जाइ॥ २५॥

और बनज ब्यौपार को, भाव बिचारै कौन।
लोइन लोने होत है, देखत वाको लौन॥ २६॥

बरवाके माँटी भरे, कौंरी बैस कुम्हार।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहार॥ २७॥

निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवै वाक।
उर मानौं आबाद है, चित्त भमै जिमि चाक॥ २८॥

बिरह अगिनि निसदिन धवै, उठै चित्त चिनगार।
बिरही जियहि जराइ कै, करत लुहार लुहार॥ २९॥

राखत मो मन लोह-सम, पार प्रेम घन टौर।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोर॥ ३०॥

कलवारी रस प्रेम को, नैननि भर भर लेत।
जोबन-मद माँती फिरै, छाती छुवन न देत॥ ३१॥

नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देत।
मतवारेकी मत हरै, जो चाहै सो लेइ॥ ३२॥

परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नेक न देइ॥ ३३॥

गाहक सों हँसि बिहँसि कै, करत बोल अरु कौल।
पहिले आपुन मोल कहि, कहत दही को मोल॥ ३४॥

काछिनि कछू न जानई, नैन बीच हित चित्त।
जोबन ज़ल सींचत रहै, काम कियारी नित्त॥ ३५॥

कुच भाटा गाजर अधर, मूरा से भुज भाइ ।
बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥ ३६ ॥

हाथ लिये हत्या फिरे, जोबन गरब हुलास ।
धरै कसाइन रैन दिन, बिरही रकत पिपास ॥ ३७ ॥

नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सों टेइ ॥ ३८ ॥

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत ।
सुरवा नेक चखाइ कै, हड़ी झारि सब देत ॥ ३९ ॥

अधर सुधर चख चीकनै, वे भरहैं तन गात ।
वाको परसो खातहीं, बिरही नहिन अघात ॥ ४० ॥

बेलन तिंली सुवास कै, तेलनि करै फुलेल ।
बिरही दृष्टि कियौ फिरै, ज्यों तेली को बैल ॥ ४१ ॥

कबहू मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात ।
वाको करुवो बचन सुनि, मुख मीठो ह्वै जात ॥ ४२ ॥

पाटम्बर पटइन पहर, सेंदुर भरे ललाट ।
बिरही नेकु न छाँड़ही, वा पटवा की हाट ॥ ४३ ॥

रस रेसम बेचत रहै, नैन सैन की सात ।
फूँदी पर को फौंदना, करै कोटि जिय घात ॥ ४४ ॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात ।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात ॥ ४५ ॥

भटियारी उर मुह करै, प्रेम पथिक को ठौर ।
द्यौस दिखावै और को, रात दिखावै और ॥ ४६ ॥

करै गुमान कमागरी, भौंह कमान चढ़ाइ ।
पिय कर गहि जब खैंचई, फिर कमान सी जाइ ॥ ४७ ॥

जो गात है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह अगिन में सेक ॥ ४८ ॥

हँसि हँसि मारै नैन सर, बारत जिय बहु पीर।
बेझा ह्वै उर जात हौ, तीरगरन कै तीर ॥ ४९ ॥

प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख संकट पै काढ़िके, सुख सरेस में देत ॥ ५० ॥

छीपनि छापौ अधर को, सुरँग पीक भर लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देत ॥ ५१ ॥

मानों मूरत मैन की, धरै रंग सुर तंग।
नैन रँगीले होत है, देखत वाको रंग ॥ ५२ ॥

सकल अंग सिकली गरनि, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकला फेर ॥ ५३ ॥

अंजन चख चंदन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग ॥ ५४ ॥

कर न काहू की सका, सक्किन जोबन रूप।
सदा सरम जल ते भरी, रहै चिबुक कै कूप ॥ ५५ ॥

सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम सर फूट।
लोक लाज उर धाकते, जात मसक सी छूट ॥ ५६ ॥

सुरँग बसन तन गाँधिनी, देखत दृगन अघाय।
कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन आय ॥ ५७ ॥

कामेश्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि।
नैन माहिं चोवा नरे, छोरन माहि फुलेल ॥ ५८ ॥

राज करत रजपूतई, देस रूप के दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप ॥ ५९ ॥

सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटै बँदूकची, भौहैं रूप कमान॥ ६०॥

चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ॥
रसही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि-न जाइ॥ ६१॥

सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
प्रान इजारै लेत है, वाकी लाल इजार॥ ६२॥

जोगिन जोगि न जानई, परै प्रेम रस माहिं।
डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छाँह॥ ६३॥

मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी विष बैन।
मुदरा धारै अधर कै, मूंद ध्यान सों नैन॥ ६४॥

भाटन भटकी प्रेम की, हट की रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरक सनेह॥ ६५॥

मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख लौन।
आपुन जोबन रूपकी, अस्तुति करै न कौन॥ ६६॥

लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान॥ ६७॥

नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ॥ ६८॥

चेरी माँती मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक-भरी जँभुवाइ कै, भुज उठाय अँगराइ॥ ६९॥

रंग रंगराती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह॥ ७०॥

बाँस चढ़ी नट बंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन मैन की सैन तें, कटत कटाछन साँस॥ ७१॥

अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध ले बरजोर।
चोर चोर मन लेत है, ठौर ठौर तन तोर ॥ ७२ ॥

बोलन पै पिय मन विमल, चितवति चित्त समाय।
निस बासर हिंदू तुरकि, कौतुक देखि लुभाय ॥ ७३ ॥

लटकि लेहु कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥ ७४ ॥

कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग।
भाना भामैं भोरही, रहै घटा के संग ॥ ७५ ॥

नैननि भीतर नृत्य कै, सैन देत सतराय।
छबि तै चित्त छुड़ावहीं, नट के भाइ दिखाय ॥ ७६ ॥

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम ॥ ७७ ॥

प्रेम अहेरी साजि कै, बांध पस्यौ रस ताम।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान ॥ ७८ ॥

मिलत अंग सब माँगना, प्रथम माँग मन लेइ।
घेर घेर उर राखही, फेर फेर नहि देइ ॥ ७९ ॥

बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह।
फिर तन ग्रेह न आवही, मन जु चैटुवा लेह ॥ ८० ॥

प्रान पूतरी पातरी, पातर कला निधान।
सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रस बान ॥ ८१ ॥

उपजावै रस में विरस, विरस माहिं रस नेम।
जो कीजै विपरीत रति, अतिहि बढ़ाव प्रेम ॥ ८२ ॥

कहै आन की आँन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप ॥ ८३ ॥

जुकिहारी जौवन लिये, हाथ फिरै रस हेत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत ॥ ८४ ॥

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोक ॥ ८५ ॥

बिरह बिथा खटकनि कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहुभाँत ही, धाइ मैन की सैन ॥ ८६ ॥

बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछू न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि ॥ ८७ ॥

जाहि ताहि के उर गड़ै, कुँदी बसन मलीन।
निसदिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन ॥ ८८ ॥

जो वाके आँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महिमही, बसन बसेधी बास ॥ ८९ ॥

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन-न कलंक।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंग ॥ ९० ॥

बिरह बिथा मन की हरै, महा विमल ह्वै जाइ।
मन मलीन जो धोवई, वाको साबुन लाइ ॥ ९१ ॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपन की उर सीव।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नीव ॥ ९२ ॥

करत बदन सुख सदन पै, घूघट नेअन छाह।
नैननि मूँदे पग धरै, भूहन आरे माह ॥ ९३ ॥

कुन्दनसी कुन्दीगरनि, कामिनि कठिन कठोर।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर ॥ ९४ ॥

पगहि मौगरी सो रहै, पेम बज्र बहु खाइ।
रँग रँग अंग अनंग के, करै बनाइ बनाइ ॥ ९५ ॥

धुनियाइन धुनि रैनि दिन, धरै सुरति की आँनि।
वाको राग न बूझ हो, कहा बजावै ताँनि॥ ९६॥

काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम हो-जाइ।
रोम रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ॥ ९७॥

कोरनि क्रूर न जानई, पेम नेम के भाव।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत भजाइ॥ ९८॥

बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम।
जोबन पानी मुख धरै, खैंचे पिय के नैन॥ ९९॥

जोवन दुति पिय दवगरनि, कहत पीय के पास।
मो मन और न भावई, छाड़ि तिहारी बास॥ १००॥

भरै कुपी कुचपीन की, कंचुक में न समाइ।
नव सनेह असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ॥ १०१॥

बेरत नगर नगारचनि, बदन रूप तन साजि।
घर घर वाके रूप को, रह्यौ नगारो बाजि॥ १०२॥

पहनै जो बिछुवा-खरी, पिय के सँग अगरात।
रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात॥ १०३॥

मन दलमलै दलालनी, रूप अंग के भाइ।
नैन मटकि मुख की चटकि, गाहक रूप दिखाइ॥ १०४॥

लोक लाज कुल काँनि तै, नहीं सुनावत बोल।
नैननि सैननि में करै, बिरही जन को मोल॥ १०५॥

निस दिन रहै ठठेरनी, झाजे माजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात॥ १०६॥

आभूषन बसतर पहिर, चितवत पिय मुख ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच, गडुवा ढार कठोर॥ १०७॥

कागद से तन कागदनि, रहै प्रेम के साथ।
रीझी भीजो नैन जल, कागद सी सिथलाइ ॥ १०८ ॥

मानो कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।
सुरत दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास ॥ १०९ ॥

देखन के मिस मसिकरनि, पुनि भर मसि खिन देत।
चख औरा कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥ ११० ॥

रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत।
कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोति ॥ १११ ॥

बाजदारनी बाज पिय, करै नहीं तन साज।
बिरह पीर तन यों रहै, जर झकिनी जिमि बाज ॥ ११२ ॥

नैन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सिचान को, अधर न चाखन देत ॥ ११३ ॥

जिलोदारनी अति जलद, बिरह अगिन के तेज।
नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महि मेज ॥ ११४ ॥

औरन को घर सघन भन, चलै जु घूंघट माहिं।
वाके रंग सुरंग की, जुलोदार पर छाँह ॥ ११५ ॥

सोभा अंग भँगेरनी, सोभित माल गुलाल।
पना पीसि पानी करै, चखन दिखावे लाल ॥ ११६ ॥

काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।
काहू की गति मति सुरत, हरुवैं हरि लेत ॥ ११७ ॥

बोजागरनि बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत बाको रस रसन, तजत नैन अन नेम ॥ ११८ ॥

पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
इक डारै घूमत रहै, एक परे मत खोइ ॥ ११९ ॥

चीताबानी देखि कै, बिरही रहे लुभाइ ।
गाड़ी को चीतो मनो, चलै न अपने पाय ॥ १२० ॥

अपनी बैसि गरूर ते, गिनै न काहू मित्त ।
लाक दिखावत ही हरै, चीता हू को चित्त ॥ १२१ ॥

कठिहारी उर की कठिन, काठपूतरी आहि ।
छिनक न पिय संग ते टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि ॥ १२२ ॥

करै न काहू को कह्यो, रहे किये हिय साथ ।
बिरही को कोमल हियो, क्यों न होइ जिम काठ ॥ १२३ ॥

घासन थोरे दिनन-की, बैठी जोवन त्यागि ।
थोरे ही बुझ जात हैं, घास जराई आगि ॥ १२४ ॥

तन पर काहू ना गिनैं, अपने पिय कें हेत ।
हरवर बैडो बैस को, थोरे हे को देत ॥ १२५ ॥

रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग ।
ना जानै संजोग रस, ना जानै बैराग ॥ १२६ ॥

अनमिल बतियां सब करै, नाहीं मलिन सनेह ।
डफली बाजे बिरह की, निस दिन वाके गेह ॥ १२७ ॥

बिरही के उर में गढ़ै, गड़िबारिन को नेह ।
शिव वाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह ॥ १२८ ॥

पैम पीर वाकी जनौं, कंटकहू न गड़ाइ ।
गाड़ी पर बैठै नहीं, नैननि सों गड़ि जाइ ॥ १२९ ॥

बैठी महत महावतन, धरै जु आपुन अंग ।
जोवन मद में गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग ॥ १३० ॥

पोत काँछु कंचुक तियन, बाला गहे कलाव ।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के तीव ॥ १३१ ॥

सरवानी विपरीत रस, किय चाहै न उराइ।
दुरै न विरहा को दुरयौ, ऊँट न छाग समाय ॥ १३२ ॥

जाहि ताहि कौ चित हरै, बाँधै पैम कटार।
चित आवत गहि खैंचई, भरि कै गहै मुहार ॥ १३३ ॥

नालिबंदनी रैन दिन, रहै सखिन के नाल।
जोवन अंग तुरंग की, बाँधन देइ न नाल ॥ १३४ ॥

चौली माँहि चुरावई, चिरवादारनि चित्त।
फेरत वाके गात पर, काम खरहरा नित्त ॥ १३५ ॥

सारी निस पिय सँग रहै, प्रेम अंग आधीन।
मूठी माहि दिखावही, बिरही को कटि खीन ॥ १३६ ॥

धोबन लुबधी प्रेम की, ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर, लुगरा धरै लिलाट ॥ १३७ ॥

सुरत अंग मुख मोर कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन, देखे वा ओर ॥ १३८ ॥

चोरत चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोवन राज ॥ १३९ ॥

जाव क्यों न व्रत नेम सब. होहु लाज कुल हानि।
जो वाके संग पोढ़ई, प्रेम अघोरी तानि ॥ १४० ॥

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
वाके अधर कपोल को. चुवौ परै जिम रंग ॥ १४१ ॥

परमलता सी लह लही, धरै पैम संयोग।
कर-गहि गरै लगाइयै, हरै विरह को रोग ॥ १४२ ॥

बरवै नायिका भेद *

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद ।
बिरच्यो यही बिचारि कै, यह बरवा रस कंद ॥ १ ॥

बेधक अनियारो बड़ो, समुझै चतुर सुजान ।
सुनत जांत चित चाव पै, यह बरवै के बान ॥ २ ॥

(मंगलाचरण)

बंदौ देवि सरदवा, पद, कर जोरि ।
बरनत काव्य बरैवा, लगइ न खोरि ॥ ३ ॥

स्वकीया

(स्वकीया-लक्षण)

लाजवती निसदिन पगी, निज पति के अनुराग ।
कहत स्वकीया सीलमय, जाको पति बड़ भाग ॥

(स्वकीया-उदाहरण)

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय ।
चलत ¶ न पग पैजनियाँ, मग ‡ अहराय ॥ ४ ॥

---

* लक्षण के समस्त दोहे मतिराम कृत रसराजके हैं ।

† नायिका तीन प्रकार की कथित है (१) स्वकीया (२) परकीया तथा (३) गणिका । पहिले स्वकीया का वर्णन किया गया है ।

¶ बजाय ‡ अहटाय

मुग्धा

(मुग्धा लक्षण)

अभिनव जोबन आगमन, जाके तन में होय ।
ताको मुग्धा कहत हैं, कवि कोविद सब कोय ॥

(मुग्धा–उदाहरण)

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ५ ॥
लागेउ आन नवेलिअहिं मनसिज बान ।
उकसन लागु उरुजवा, दिग † तिरछान ॥ ६ ॥

मुग्धा भेद

(अज्ञातयौवना-लक्षण)

निजतन यौवन आगमन, जो नहिं जानत नारि ।
सो अज्ञात सुजोबना, बरनत कवि निरधारि ॥

(अज्ञातयौवना-उदाहरण)

कौन * रोग दौ ¶ छतियाँ, उकस्यो ‡ आइ ।
दुखि दुखि उठत करेजवा, लगि जनु लाइ ॥ ७ ॥

(ज्ञातयौवना-लक्षण)

निज तन जोबन आगमन, जाने परत है जाहि ।
कवि-कोविद सब कहत है, ज्ञात जौबना ताहि ॥

---

† दृग । * कवन ¶ दुहूँ, दुहुँ ‡ उपजेउ, उपजेउ

(ज्ञातयौवना-उदाहरण)

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन ।
छुटिगो संग गोइअवाँ, नहिं भल कीन ॥ ८ ॥

(नवोढ़ा-लक्षण)

मुग्धा जो भय लाज युत, रति न चहे पति संग ।
ताहि नवोढ़ा कहत हैं जे प्रवीन रस रंग ॥

(नवोढ़ा उदाहरण)

पहिरत चूनि चुनरिया, भूषन भाव ।
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव ॥ ९ ॥

(विश्रब्ध नवोढ़ा-लक्षण)

होय नवोढ़ा के कछू, प्रीतम सों परतीत ।
सो विश्रब्ध नवोढ़ यों, बरनत कवि रस मीत ॥

(विश्रब्ध नवोढ़ा-उदाहरण)

जंघन जोरत गोरिया, करत कठोर ।
छुवन न पाव पियवा, कहुँ कुच कोर ॥ १० ॥

मध्या

(मध्या लक्षण)

जाके मन में होत है, लज्जा मदन समान ।
ताको मध्या कहत हैं, कवि 'मतिराम' सुजान ॥

(मध्या-उदाहरण)

निसदिन चाहत चाहन, श्री व्रजराज ।
लाज जोरावरि है बसि, करत अकाज ॥ ११ ॥

प्रौढ़ा

(प्रौढ़ा-लक्षण)

निज पति सों रस केलि की, सकल कलानि प्रवीन ।
ताखों प्रौढ़ा कहत हैं, जे कविता रस लीन ॥

(प्रौढ़ा-उदाहरण)

भोरहि बोल कोइलिया, बढ़वत ताप ।
घरी एक भरि अलिआ, * रहु चुप चाप ॥ १२ ॥

परकीया

(परकीया लक्षण)

प्रेम करै पर पुरुष सौं, परकीया सो जान ।
दोय भेद ऊढ़ा प्रथम, बहुरि अनूढ़ा जान ॥

(परकीया-उदाहरण)

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन भेद ।
गैल-न छाँडत गोरिया, गनत न खेद ॥ १३ ॥

(ऊढ़ा-लक्षण)

ब्याही औरै पुरुष सौं, औरै सो रस लीन ।
ऊढ़ा तासों कहत हैं, कवि पंडित परवीन ॥

(ऊढ़ा-उदाहरण)

निसि दिन सासु नँनदिआ, मोहि घर घेरु ।
सुनन न देत मुरलिया, माधुन टेरु ॥ १५ ॥

* घरि घरि एक घरिअवा-

(विदग्धा लक्षण)

करै बचन सों चातुरी, बचनविदग्धा जान ।
करै क्रिया सों चातुरी, क्रियाविदग्धा मान ॥

(बचनविदग्धा-उदाहरण)

थोरेसि † नाक नथुनिया, मित हित नीक ।
कहेसि नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥ २० ॥

(क्रिया-विदग्धा)

बाहर लै कै दियवा, बारन जाय ।
सास ननद घर पहुँचत, देत बुताय ॥ २१ ॥

(लक्षिता-लक्षण)

होत लखाय सखीन को, पिय सों जाको प्रेम ।
ताहि लच्छिता कहत हैं, कवि कोविद करि नेम ॥

(लक्षिता-उदाहरण)

आज नयन के कोरवा, औरै भाँति ।
नागर नेह नवेलिअहिं, मूँदिन जाति ॥ २२ ॥

(प्रथम अनुसयना-लक्षण)

केलि करै जहँ कंत सो, सो थल मिट्यो निहारि ।
कहि अनुसयना तासु सों, सोच करै बर नारि ॥

(प्रथम अनुसयना-लक्षण)

जमुना तीर तरुनअहिं, लखि भो सूल ।
झरि गो कंज बेइलिआ, फूलत फूल ॥ २३ ॥

---

† तनिक

ग्रीषम दहत दवरिया, कुंज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहि, बाढ़त पीर॥ २४॥

(द्वितीय अनुसयना लक्षण)

होनहार संकेत को, सोच करै जो नारि।
है अनुसयना दूसरी, कहत सो सुकवि बिचारि॥

(द्वितीय अनुसयना-उदाहरण)

धीरज धर किन गोरिआ, करि अनुराग।
जात जहाँ पिय देसवा, धन बर बाग॥ २५॥

जनि मरु रोइ दुलहिआ, धरु मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिआ, और घर सून॥ २६॥

(तृतीय अनुसयना-लक्षण)

प्रीतम गये सहेट को, जाने हेतुहिं पाय।
तृतीया अनुसयना कही, हौं न गई पछताय॥

(तृतीय अनुसयना-उदाहरण)

मितवा करनि पसुरिआ, सुमन सपात।
फिरि फिरि ताकि तरुनिआ, मन पछितात॥ २७॥

मित उतते फिरि आवहु, देखि अराम।
मैं न गई अमरइया, रह्यो न काम॥ २८॥

(मुदिता-लक्षण)

चित चाही सुन बात जखि, मुदित होय जो बाल।
तासों मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल॥

(मुदिता-उदाहरण)

ऐहों कान्ह नेवतवा, भो दुख दून।
बहू करे सुखबरिया, है घर सुन॥ २९॥

नेवते गई नँनदिआ, मैके मास।
दुलहिन तोरि खबरिया, औ पिय पास ॥ ३० ॥

(कुलटा लक्षण)

जो चाहे बहुनायकनि, संग सुरति पर प्रीति।
तासों कुलटा कहत हैं, लखि ग्रंथन की रीति ॥

(कुलटा उदाहरण)

जस मदमातिल हथिआ, झुमकत जाय।
चितवति छैल तरुनिआ, मुहु मुसक्याय ॥ ३१ ॥
चितवति ऊँच अटरिया, दाहिन बाम।
लाखन लखन विदेसिया, है बस काम ॥ ३२ ॥

गणिका

(गणिका-लक्षण)

धन दे जाके संग में, रमै रसिक सब कोय।
ग्रंथन को मति देखि के गनिका जानो सोय ॥

(गणिका-उदाहरण)

लखि लखि धनिक धनिअवा, * बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिआ, कजरा रेख † ॥ ३३ ॥

(अन्य संभोग दुःखिता-लक्षण)

निजपति के रति चिन्ह जो, लखै और तिय-देह।
अन्य सुरति दुखिता कहो, करै पेच-पिस-तेह ॥

---

* मयकथा † देख

(अन्य सुरति दुःखिता-उदाहरण)

मैं पठई जेहि कजवा, आइसि साधि ।
छुटि गो सीस जुरवना, दिठ ‡ करि बाँधि ॥ ३४ ॥

मो हित ¶ हरबर आवत, भौ पथ खेद ।
रहि रहि लेत उससवा, औ तन स्वेद ॥ ३५ ॥

(प्रेम गर्विता-लक्षण)

निज नायक के प्रेमको, गरब जनावत बाम ।
प्रेम गर्विता कहत हैं, तासों सुमति ललाम ॥

(प्रेमगर्विता-उदाहरण)

आपुहि देत कजरवा, गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रान अधार ॥ ३६ ॥

औरन पाय जवकवा, नाइन दीन ।
तुम्हें अँगोरत गोरिया, न्हान न कीन ॥ ३७ ॥

(रूपगर्विता-लक्षण)

जाकों अपने रूपको, अतिही होय गुमान ।
रूपगर्विता कहत हैं, सो मतिराम सुजान ॥

(रूप गर्विता-उदाहरण)

वक्र मलिन बिषभैया, औगुन तीन ।
मोहि कहि चंद-वदनिया, पियमात हीन ॥ ३८ ॥

रातुल भयेसि मुगउआ, निरस पखान ।
एहि मधु भरल अधरवा, करत समान ॥ ३९ ॥

---

‡ कच ¶ सखि इत हरबर आवत

दस विधि नायिका ¶

(१ प्रोषितपतिका-लक्षण)

जाको पिय परदेस में, विरह-विकल तिय होय।
प्रोषितपतिका नायिका, ताहि कहत सब कोय॥

(मुग्धा-प्रोषितपतिका-उदाहरण)

तैं अब जाइ बेइलियां, जरि बरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा, लखि तव फूल॥ ४० ॥

(मध्या-प्रोषितपतिका-उदाहरण)

का तुम मंजु † मलतिया, * झलरति जाति।
पिय बिन मन हुकरैया, ‡ मोहि न सुहाति॥ ४१ ॥

(प्रौढ़ा-प्रोषितपतिका-उदाहरण)

का सन कहउँ सँदेसवा, पिय परदेसु।
रातुल है नहिं फूले, उहि बिन टेसु॥ ४२ ॥

(२ खंडिता लक्षण)

पिय तन और नारि के, रति के चीन्ह निहारि।
दुखित होय सो खंडिता, बरनत सुकवि विचारि॥

(मुग्धा खंडिता-उदाहरण)

सखि सिख सीखि नवेलिया, कीन्हेसि मान।
पिय लखि कोप-भवनवा, ठानेसि ठान॥ ४३ ॥

¶ (१) प्रोषितपतिका (२) खंडिता (३) कलहातरिता (४) विप्रलब्धा (५) उतकंठिता (६) वासकसज्जा (७) स्वाधीनपतिका (८) अभिसारिका (९) प्रवत्स्यत्पतिका (१०) आगतपतिका।

† लतिअवा * का तुम जुगुल तिरिअवा। ‡ हुड़कइयाँ, अटरिया।

सीस नवाइ नवेलिया निचवा जोइ ।
छिति खनि छोर छिगुनिआँ सुसुकन रोइ ॥ ४४ ॥

(मध्या-खंडिता-उदाहरण)

ठकि गौ पीय पलँगिआ आलस पाइ ।
पौढहु जाइ बरोटवा सेज बिछाइ ॥ ४५ ॥
पोछहु अनख कजरवा जावक भाल ।
उपट्यौ पीतम छतिया बिन गुन माल ॥ ४६ ॥

(प्रौढ़ा-खंडिता-उदाहरण)

पिय आवत अँगनइआ, उठिकै लीन्ह ।
बिहँसत चतुर तिरिअवा, बैठन दीन्ह ॥ ४७ ॥

(परकीया-खंडिता-उदाहरण)

जेहि लगि सजन सगेइया * छुट घर बार ।
अपने होत पिअरवा, सोच परार ॥ ४८ ॥
पौढ़हु पीय पलँगिआ मीड़हु पाय ।
रैन जगे कर निदिआ सब मिटि जाय ॥ ४९ ॥

(सामान्या-खंडिता उदाहरण)

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।
लिहेसि काढ़ि बरिअइया, तकि मनि-माल ॥ ५० ॥

(३ कलहांतरिता-लक्षण)

कह्यो न माने कंत को, फिर पाछे पछताइ ।
कलहान्तरिता नायिका, ताहि कहत कबिराइ ॥

---

* सनेही ।

(मुग्धा-कलहान्तरिता-उदाहरण)

आइहु अबहिं गवनवा, तुरतहि मान ।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछुतान ॥ ५१ ॥

(मध्या-कलहान्तरिता-उदाहरण)

मैं मतिमंद तिरिअवा, परलिउ भोरि ।
ते नहिं कन्त मनावत, तेहि कछु खोरि ॥ ५२ ॥

(प्रौढ़ा-कलहान्तरिता-उदाहरण)

थकिगौ करि मनुहरिआ, फिरिगौ पीव ।
मैं उठि तुरत न लाएउ, हिमकर हीव ॥ ५३ ॥

(परकीया-कलहान्तरिता-उदाहरण)

जेहि लगि कीन विरोधवा, ननद जठाँनि ।
लीए न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५४ ॥

(सामान्या-कलहान्तरिता-उदाहरण)

जिहिं दीने बहु बेरवा, मोहि मनि-माल ।
तेहि से रूठिउ सखिया, फिरगौ लाल ॥ ५५ ॥

(४ विप्रलब्धा लक्षण)

आपु जाइ संकेत में, मिलै न जाको पीउ ।
ताहि विप्रलब्धा कहत, सोच करत अति जीउ ॥

(मुग्धा विप्रलब्धा-उदाहरण)

मिलेउ न कन्त सहेटवा, लखेउ डेराइ ।
धनिया कमल-बदनिया, गौ कुँमिलाइ ॥ ५६ ॥

(मध्या-विप्रलब्धा-उदाहरण)

दीख न केलि भवनवा, नन्दकुमार ।
लै लै ऊँचि उससवा, ह्वै विकरार ॥ ५७ ॥

(प्रौढ़ा-विप्रलब्धा-उदाहरण)

देख न कन्त सहेटवा, भो दुखि पूरि ।
रोवत नैन कजरवा, होइ गौ दूरि ॥ ५८ ॥

(परकीया-विप्रलब्धा-उदाहरण)

बैरिनि मँह अभिसरवा, अति दुखदानि ।
तापर मिलेउ न मितवा, भो पछुतानि ॥ ५९ ॥

(सामान्या-विप्रलब्धा)

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥ ६० ॥

(५ उत्कंठिता-लक्षण)

आपु जाइ सकेत में, पिय नहिँ आयो होइ ।
ताको मन चिन्ता करै, उत्का जानो सोइ ॥

(मुग्धा-उत्कंठिता-उदाहरण)

गौ जुग जाम जमनिआ, पिय नहिँ आइ ।
राखेहु कौन सवतिआ दहु * बिलमाइ ॥ ६१ ॥

(मध्या-उत्कंठिता-उदाहरण)

पिय-पथ हेरति गोरिया, भो भिनुसार ।
चलहु न करहि तिरिअवा, तौ † इतवार ॥ ६२ ॥

(परकीया-उत्कंठिता-उदाहरण)

उठ उठ जात खिरकिया, जोहन बाट ।
कत वह आइहि मितवा, सूनी खाट ॥ ६४ ॥

---

* धौं † तुव

(सामान्या-उत्कंठिता-उदाहरण)

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ॥ ६५॥

(६ वासकसज्जा-लक्षण)

ऐहैं प्रीतम आज ऐ, निहचै जानैं बाम।
साजै सेज सिँगार सुख, वासकसज्जा नाम॥

(मुग्धा-वासकसज्जा-उदाहरण)

हरुवे गवनि नबेलिअहि, दीठि बचाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाय॥ ६६॥

(मध्या-वासकसज्जा-उदाहरण)

सेज बिछाय पलँगिया, अँग सिँगार।
चौंकत चितै तरुनिआ, दहु कै बार॥ ६७॥

(प्रौढ़ा वासकसज्जा-उदाहरण)

हँसि हँसि हेरि अरसिया सहज सिँगार।
उतरत चढ़त नबेलियहि, तिय * कै बार॥ ६८॥

(परकीया-वासकसज्जा-उदाहरण)

सोवत सब गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेस खोलि खिरकिया, उठ के हाल॥ ६९॥

(सामान्या-वासकसज्जा-उदाहरण)

कीन्हेसि सबै सिँगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रान पियरवा, लै मनि-माल॥ ७०॥

---

* पिय

(७ स्वाधीनपतिका नायिका-लक्षण)

सदा रूप गुन रीझि पिय, जाके रहै अधीन ।
स्वाधिनपतिका नायका, ताहि कहत परबीन ॥

(मुग्धा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाँय ।
आपु देत मोहि पिअवा, पान खवाय ॥ ७१ ॥

(मध्या-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

प्रीतम करत पियरवा, कहल न जाति ।
रहत गढ़ावत सोनवा, यहै सिरात ॥ ७२ ॥

(प्रौढ़ा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन ।
बिछुरत तजत परनवाँ, रहत अधीन ॥ ७३ ॥

(परकीया-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

भौ जुग नैन चकोरवा, पिय-मुखचंद ।
जानति है तिय अपनै, मोहि सुखकन्द ॥ ७४ ॥

(सामान्या-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

लै हीरन के हरवा, मोतिक माल ।
मोहि रहत पहिरावत, बसि ह्वै लाल ॥ ७५ ॥

(८ अभिसारिका-लक्षण)

पियहि बुलावै आपु कै पिय पै आपुहि जाय ।
ताहि कहत अभिसारिका, जे प्रवीन कविराय ॥

(मुग्धा-अभिसारिका-उदाहरण)

चली लिवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग ।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतंग ॥ ७६ ॥

(मध्या अभिसारिका-उदाहरण)

पहिरे लाल अछुअवा, तिय गज पाय।
चढ़े नेह हथिअहवा, हुलसत जाय ॥ ७७ ॥

(प्रौढ़ाअभिसरिका-उदाहरण)

चली रइनि अँधियरवा, साहस गाढ़ि।
पायन केरि कँगनिआ, डारेसि काढ़ि ॥ ७८ ॥

(परकीया अभिसारिका-उदाहरण)

नीलमनिन के हरवा, नील सिँगार।
किए रइनि अँधिअरिआ, धनि अभिसार ॥ ७६ ॥

(शुक्लाभिसारिका-उदाहरण)

सेत कुसम कै हरुवा, भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिया, पिय के हेत ॥ ८० ॥

(दिवाभिसरिका-उदाहरण)

पहरि बसन जरितरिया, पिय के होत ॥
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि-जोत ॥ ८१ ॥

(सामान्या अभिसरिका-उदाहरण)

धन हित कीन्ह सिँगरवा, चातुर बाल ॥
चली संग लै चैरिया, जहवाँ लाल ॥ ८२ ॥

(६ प्रवत्स्यत्प्रेयसी-लक्षण)

होनहार पिय-बिरह के, बिकल होइ जो बाल।
ताहि प्रवच्छति प्रेयसी, बरनत बुद्धि विसाल ॥

(मुग्धा प्रवत्स्यतिपतिका-उदाहरण)

परिगौ कानन सखिया, पियकै गौन।
बैठी कनक-पलँगिया, होइके मौन ॥ ८३ ॥

(मध्या प्रवत्स्यतिपतिका-उदाहरण)

सुठि सुकुमार तरुनिया, सुनि पिय-गौन ।
लाजनि पौढ़ि ओवरया, ह्वै कै मौन ॥ ८४ ॥

(प्रौढ़ाप्रवत्स्यतिपतिका-उदाहरण)

बन घन फूलि टेसुइया, बगिअन बेलि ॥
तब पिय चलेउ बिदेसवा, फागुन फैलि ॥ ८५ ॥

(परकीया प्रवत्स्यतिपतिका-उदाहरण)

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
तिय की सुरति गगरिया, रहि मग लागि ॥ ८६ ॥

(सामान्या प्रवत्स्यत पतिका-उदाहरण)

प्रीतम इक सुमिरिनियाँ, मोहि दै जाहु ।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करौं निबाहु ॥ ८७ ॥

(१० आगतपतिका-लक्षण)

जा तिय के परदेस तें आवै पति मतिराम ।
ताहि कहत कबि लोग हैं, आगतपतिका नाम ॥

(मुग्धा आगतपतिका-उदाहरण)

बहुत दिवस पै पियवा, आएहु आजु ॥
पुलकित नवल बधुइआ, करु गृह-काजु ॥ ८८ ॥

(मध्या आगतपतिका-उदाहरण)

पियवा पौरि दुअरवा, उठि किन देखु ।
दुरलभ पाइ बिदेसआ, जिय के लेखु ॥ ८९ ॥

(प्रौढ़ा आगतपतिका-उदाहरण)

पावन प्रान-पियरवा, हेरेउ आइ ।
तलफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ ॥ ९० ॥

(परकीया आगतपतिका-उदाहरण)

पूँछत चली खबरिया, मितवा तीर ।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर ॥ ६१ ॥

(सामान्या आगतपतिका-उदाहरण)

तबलगि मिटै न मितवा, तन की पीर ॥
जौलगि पहिरि न हरवा, जटिल सुहीर ॥ ६२ ॥

त्रिविध नायिका *

(उत्तमा-लक्षण)

पिय हित कै अनहित करै, आपु करै हित नारि ।
ताहि उत्तमा नायिका, कबिजन कहत बिचारि ॥

(उत्तमा-उदाहरण)

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिसि कीन्ह ।
बिहँसत चँदन-चउकिया, बैठन दीन्ह ॥ ६३ ॥

(मध्यमा-लक्षण)

पिय के हित सों हित करे, अनहित कीन्हे मान ।
ताहि मध्यमा कहत हैं, कबि मतिराम सुजान ॥

(मध्यमा-उदाहरण)

बिनगुन पिव उर हरवा, उपरेउ हेरि ।
चुप ह्वै चित्र-पुतरिया, रहि चख फेरि ॥ ६४ ॥

(अधमा-लक्षण)

पियसों हित हू के किए, करै मान जो बाल ।
ताकों अधमा कहत है, कवि मतिराम रसाल ॥

---

* (१) उत्तमा (२) मध्यमा (३) अधमा ।

(अधमा-उदाहरण)

बार बार गुर मनवा, जनि करु नारि ॥
मानिक औ गज-मोतिया, जो लगि बारि ॥ ९५ ॥

नायक

(नायक-लक्षण)

तरुन सुबन सुन्दर सुकुल, कामकला परवीन ।
नायक यौं 'मतिराम' कहि, कवित मीत रसलीन ॥

(नायक-उदाहरण)

सुन्दर चतुर धनिअवा, जातिउ ऊँच ।
केलि-कला-परबिनवा, सील-समूच ॥ ९६ ॥

(त्रिविध नायक-भेद)

पति उपपति वैसिक त्रिबिध, नायक-भेद बखानि ।
बिधिसों ब्याहौ पति कहै, कवि-कोविद मतिजानि ॥

(पति-उदाहरण)

लैकै सुघर खुरुपिया, पिय के साथ ।
छइबे एक छतरिआ, बरखत पाथ ॥ ९८ ॥

(पति-भेद)

चारि भांतिसों बरनिए, अधम कहत अनुकूल ।
दच्छिन औ सठ धृष्ट कहि, रस सिँगार को मूल ॥

(अनुकूल-लक्षण)

सदा आपुनी नारिसों, जासों अति ही प्रीति ।
परनारी सों बिमुख जो, सो अनुकुल की रीति ॥

(अनुकूल-उदाहरण)

करत नहीं अपरधवा, सपनेहुँ पीव ।
मान करै-की सधवा रहि गइ जीव * ॥ ६६ ॥

(दक्षिण-लच्छन)

एक भांति सब तिअनिसों, जाको रहै सनेह ।
सो दच्छिन मतिराम कहि, बरनत है मतिगेह ॥

(दक्षिण-उदाहरण)

सब मिलि करै निहोरवा, हम कह देह ।
गुहि-गुहि चंपक टँडिआ, उचइ सो लेह ‡ ॥ १०० ॥

(धृष्ट-लक्षण)

करै दोष निरसंक जो, डरै न तिय को मान ।
लाज धरै मन में नहीं, नायक धृष्ट निदान ॥

(धृष्ट-उदाहरण)

जहँ जागेउ सब रैनियाँ, तहवाँ जाउ ।
जोरि नैन निरलजवा, कत मुसकाउ ॥ १०१ ॥

(शठ-लक्षण)

प्रिय बोले अप्रिय करै, निपट कपटयुत होइ ।
सठ नायक तासों कहै, कवि कोविद सब कोइ ॥

(शठ-उदाहरण)

छूट्यौ लाज गरिअवा, औ कुल-कानि ।
करत रोज अपरधवा, परिगौ बानि ॥ १०२ ॥

---

* मान करन की बिरियाँ, रहि गई हीय ।

‡ चुन चुन चंपक चुरिया, उच से लेहु ॥

(उपपति तथा वैसिक-लक्षण)

जो परनारी को रसिक, उपपति ताकों जानि ।
प्रीतम सो गनिकान के, वैसिक ताहि बखानि ॥

(उपपति-उदाहरण)

झांकि झरोखे गोरिया, अँखियन जोरि ।
फिर चितवति चित मितवा, करत निहोरि ॥ १०३ ॥

(वैसिक उदाहरण)

लटकी नील जुलुफिआ, बनसी भाइ ।
मो मन बार बधुइआ, मीन बझाइ ॥ १०४ ॥

(प्रोषित नायक-लक्षण)

नायक होय विदेस में, जो वियोग अकुलाइ ।
प्रोषित तासों कहत हैं, जे प्रवीन कविराइ ॥

(प्रोषित नायक-उदाहरण)

करबेउ ऊँच अटरिया, तिय सँग केलि ।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ १०५ ॥

(मानी नायक-लक्षण)

करत नायिका सों कछू, नायक जब अभिमान ।
मानी तासों कहत हैं, कवि कोविद करि गान ॥

(मानी नायक-उदाहरण)

अब न जनम भर सखिया, ताकौं वोहि ।
पैंठत गौ अभिमनवा, तजिके मोहि ॥ १०६ ॥

(वचन-चतुर नायक-लक्षण)

बचनन में जो करत है, चतुराई मतिमान ।
बचन चतुर नायक सरस, लीजै जानि सुजान ॥

(वचन-चतुर नायक-उदाहरण)

सघन कुंज अमरइया, सीतल छाहिँ ।
झगरत आइ कोइलिया, फिर उड़ि जाहिँ ॥ १०७ ॥

(क्रिया-चतुर नायक-लक्षण)

करै क्रिया सों चातुरी, नायक जो रसलीन ।
चतुर-क्रिया तासों कहत, कवि मतिराम प्रबीन ॥

(क्रिया-चतुर नायक-उदाहरण)

खेलत जानेसि टोलिया, नंदकिसोर ।
छुइ वृषभान-कुअरिआ, भँगा चोर ॥ १०८ ॥

दर्शन

दरसँन आलंबनहिं में, कवि 'मतिराम' बखानि ।
श्रवन स्वप्न पुनि चित्र त्यों, पुनि परतच्छ बखानि ॥

(श्रवण-दर्शन)

आएउ मीत विदेसिया, सुनु सखि तोर ।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ १०९ ॥

(स्वप्न-दर्शन)

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भौ सुख-खानि ।
जाइ जगाएउ चेरिआ, भौ दुखदानि ॥ ११० ॥

(चित्र-दर्शन)

पिय-मूरति चितसरिया, देखति बाल ।
बितवत औधि-बसरवा जपि-जपि माल ॥ १११ ॥

(साक्षात्-दर्शन)

बिरहिन और बिदेसिया, भौ इक ठोर ।
पिय-मुंख हेरि तिरिअवा, चन्द्र-चकोर ॥ ११२ ॥

सखी तथा सखीजन-कर्म

जा तिय सों नहिं नायका, कछू छिपावति बात ।
तासों बरनत सखि कही, सब कवित्त-अवदात ॥
मंडन औ शिक्षा करन, उपालंभ परिहास ।
काज सखी को जानिए, औरो बुद्धि बिलास ॥

(मंडन-उदाहरण)

सखियन कीन्ह सिँगरवा, रचि बहु भाँति ।
हेरति नैन अरसिया, मुहुँ मुसुकाति ॥ ११३ ॥

(शिक्षा-उदाहरण)

थके बइठि गोड़बरिआ, मींड़हु पाउ ।
पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डुलाउ ॥ ११४ ॥

(उपालंभ-उदाहरण)

चुप ह्वै रहे सँदेसवा, सुनि मुसुकाय ।
पिय निज हाथ बिरवना, दीन्ह पठाय ॥ ११५ ॥

(परिहास-उदाहरण)

बिहँसत भँउह चढ़ाए, धनुष मनोज ।
लावत उर उपटनवाँ, पैंठि उरोज ॥ ११६ ॥

॥ दोहा ॥

लच्छन दोहा जानिए, उदाहरन बरवान ।
दूनों के संग्रह भए, रस सिँगार निर्मान ॥ ११७ ॥
एह नवीन संग्रह सुनो, जो देखे चित देय ।
बिबिध नाइका नायकनि, जानि भली बिधि लेय ॥ ११८ ॥

बरवै *

बन्दहुँ बिघन-बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
निर्मलबुद्धि-प्रकासन, सिसुससि-सीस ॥ १ ॥

सुमिरहु मन दृढ़ करिकै, नन्दकुमार ।
जो वृषभान-कुँवरि कै, प्रान-अधार ॥ २ ॥

भजहु चराचर-नायक, सूरजदेव ।
दीनजनन-सुख-दायक, त्यारन ऐब ॥ ३ ॥

ध्यावहुँ सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥ ४ ॥

ध्यावहुँ विपद्-विदारन, सुवन समीर ।
खल-दानव-बन-जारन, प्रिय रघुबीर ॥ ५ ॥

पुन पुन बन्दहुँ गुरु के पद-जलजात ।
जिहि प्रताप तें मनके, तिमिर बिलात ॥ ६ ॥

करत घुमड़ि घन-घुरवा, मुरवा सोर ।
लगि रह विकसि अकुँरवा, नन्दकिसोर ॥ ७ ॥

बरसत मेघ चहूँ दिसि, मूसरधार ।
सावन आवन कीजत, नन्दकुमार ॥ ८ ॥

अजहुँ न आये सुधि कै, सखि घनश्याम ।
राख लिये कहुँ बसिकै, काहू बाम ॥ ९ ॥

कबलों रहि है सजनी, मन में धीर ।
सावनहूँ नहिं आवन, कित बलबीर ॥ १० ॥

---

* इसके आरंभ के १०१ बरवै एक प्राचीन प्रति के अनुसार दिये हैं ।

घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज ।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन-तीज ॥ ११ ॥

पीव पीव कहि चातक, सठ अधरात ।
करत बिरहनी तिय के, हिय उतपात ॥ १२ ॥

सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान ।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान ॥ १३ ॥

मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय ।
तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय ॥ १४ ॥

बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाव ।
मनमोहन तें मिलबौं, सखि कहँ दाव ॥ १५ ॥

मनमोहन बिन देखें, दिन न सुहाय ।
गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय ॥ १६ ॥

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े, दिसि विदिसान ।
सावन दिन मनभावन, करत पयान ॥ १७ ॥

समुझति सुमुखि सयानी, बादर झूम ।
बिरहन के हिय भभकत, तिनकी धूम ॥ १८ ॥

उलहे नये अकुरवा, बिन बलवीर ।
मानहु मदन महिपके, बिनपर तीर ॥ १९ ॥

सुगमहि गातहि गारन, जारन देह ।
अगम महा अतिपारन, सुघर सनेह ॥ २० ॥

मनमोहन तुव मूरति, बेरिझबार ।
बिनि पियान मुहि बनिहै, सकल बिचार ॥ २१ ॥

झूमि-झूमि चहुं ओरन, बरसत मेह ।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरफत देह ॥ २२ ॥

झूँठी झूँठी सौंहैं, हरि नित खात ।
फिर जब मिलत मरूके, उतर बतात ॥ २३ ॥

डोलत त्रिविध मरुतवा, सुखद सुढार ।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥ २४ ॥

कहियो पथिक सँदिसवा, गहिके पाय ।
मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यौ न जाय ॥ २५ ॥

जबते आयौ सजनी, मास असाढ़ ।
जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ॥ २६ ॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़ ।
आये नन्द दिठनवा, लगत असाढ़ ॥ २७ ॥

वेद पुरान बखानत, अधम उधार ।
केहि कारण करुणानिधि, करत विचार ॥ २८ ॥

लगत असाढ़ कहत हो, चलन किशोर ।
घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर ॥ २९ ॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस ।
गहन लग्यौ अबलनि पै, धनुष सुरेस ॥ ३० ॥

बिरह बढ़्यौ सखि अंगन, बढ़्यो चवाउ ।
कर्‌यौ निठुर नँदनन्दन, कौन कुदाव ? ॥ ३१ ॥

भज्यो कितौ न जनम भरि, कितनी जाग ।
संग रहत या तन की, छाँहीं भाग ॥ ३२ ॥

भज रे मन नँदनन्दन, बिपति-बिदार ।
गोपीजन-मन-रंजन, परम उदार ॥ ३३ ॥

जदपि बसत है सजनी, लाखन लोग ।
हरि बिन कित यह चितको, सुखसंजोग ॥ ३४ ॥

जदपि भई जल पूरित, छितव सुआस ।
स्वाँत बूंद बिन चातक, मरत-पियास ॥ ३५ ॥

देखन ही को निस दिन, तरफत देह ।
यही होत मधुसूदन, पूरन नेह ? ॥ ३६ ॥

कबते देखत सजनी, बरसत मेह ।
गनत न चढ़े अटनपै, सने सनेह ॥ ३७ ॥

बिरह बिथा ते लखियत, मरिबौ झार ।
जो नहिं मिलिहै मोहन, जीवन मूरि ॥ ३८ ॥

ऊधौ भलौ न कहनौ, कछु पर पूठि ।
साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि ॥ ३९ ॥

भादों निस अँधयरिया, घर अँधयार ।
बिसरयो सुघर बटोही, शिव आगार ॥ ४० ॥

हौं लखिहों री सजनी, चौथ मयंक ।
देखों केहि बिधि हरिसों, लगै कलंक ॥ ४१ ॥

इन बातन कछु होत न, कहो हजार ।
सब ही तैं हँसि बोलत, नन्दकुमार ॥ ४२ ॥

कहा छलत हो ऊधौ, दै परतीति ।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहनि मीति ॥ ४३ ॥

बन उपवन गिरि सरिता, जिती-कठोर ।
लगत देह से बिछुरे, नंद किसोर ॥ ४४ ॥

भलि भलि दरसन दीनहु, सब निसि-टारि ।
कैसे आबन कीनहु, हौं बलिहारि ॥ ४५ ॥

आदिहिं-ते सब छुटगो जग ब्योहार ।
ऊधौ अब न तिनौं भरि, रही उधार ॥ ४६ ॥

वेर रह्यौ दिन रतियाँ, बिरह बलाय।
मोहन की यह बतियां, ऊधो हाय! ॥ ४७ ॥

नर नारी मतवारी, अचरज नाहिं।
होत विटप हू नागै, फागुन माहिं ॥ ४८ ॥

सहज हँसोई बातैं, होत चवाइ।
मोहन कों तन सजनी, दै समुझाइ ॥ ४९ ॥

ज्यों चौरासी लखि मैं, मानुष देह।
त्योंही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥ ५० ॥

मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ॥ ५१ ॥

अति अद्भुत छबि सागर, मोहन गात।
देखत ही सखि बूढ़त दृग-जलजात ॥ ५२ ॥

निरमोही अति झूँठो, साँवर गात।
चुभ्यौ रहत चित कौधौं, जानि-न जात ॥ ५३ ॥

बिन देखें कल नाहिन, यह अखियाँन।
पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥ ५४ ॥

जब तब मोहन झूँठी, सौंहें खात।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥ ५५ ॥

ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन प्रान।
ऊधो यह संदिसवा, अकह कहान ॥ ५६ ॥

मोहि मीत बिन देखें, छिन न सुहात।
पल पल भरि भरि उझलत, दृग जलजात ॥५७॥

जबते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्यौ हिय साँसन, आँसुन नैन ॥ ५८ ॥

कैसे जावत कोऊ, दूरि बसाय।
पल अन्तर हू सजनी, रह्यो न जाय ॥ ५९ ॥

आज कहत हो ऊधौ, अवधि बताइ।
अवधि अवधि-लौं दुस्तर, परत लखाइ ॥ ६० ॥

मिलनि न बनि है भाखत, इन इक टूक।
भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक ॥ ६१ ॥

गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
तबते लगनि अगनि की, उठत भबूक ॥ ६२ ॥

मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन ॥ ६३ ॥

होरी पूजत सजनी, जुर नर नारि।
हरि-बिन जानहु जिय मैं, दई दवारि ॥ ६४ ॥

दिस बिदसाँन करत ज्यों, कोयल कूक।
चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक ॥ ६५ ॥

जबते मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं।
रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहिं ॥ ६६ ॥

उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।
जबते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार ॥ ६७ ॥

जक न परत बिन हेरें, सखिन सरोस।
हरि न मिलत बसि नैरे, यह अफसोस ॥ ६८ ॥

चतुर मया कर मिलि हौं, तुरतहिं आय।
बिन देखे निस बासर, तरफत जाइ ॥ ६९ ॥

तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।
होरी से त्यौहारन, पीहर जात ॥ ७० ॥

और कहा हरि कहिये, धनि यह नेह ।
देखन ही को निसदिन, तरफत देह ॥ ७१ ॥

जबते बिछुरे मोहन, भूख न प्यास ।
बेरि बेरि बढ़ि आवत, बड़े, उसास ॥ ७२ ॥

अन्तर गत हिय बेधत, छेदत प्रान ।
विष सम परम सबन तें, लोचन बान ॥ ७३ ॥

गली अँधेरी मिलकै, रहि चुप चाप ।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप ॥ ७४ ॥

सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय ।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय ! ॥ ७५ ॥

उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज ।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि बृजराज ! ॥ ७६ ॥

जिहि के लिये जगते में, बजै निसान ।
तिंहि-ते करे अबोलन, कौन सयान ॥ ७७ ॥

रे मन भज निसबासर, श्री बलवीर ।
जो बिन जाँचे टारत, जन की पीर ॥ ७८ ॥

बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय ।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय ॥ ७६ ॥

सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर ।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर ॥ ८० ॥

लखि मोहन की बंसी, बंसी जान ।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥ ८१ ॥

कोटि जतनहू फिरत न, बिधि की बात ।
चकवा पिंजरे हू सुनि, विमुख बसात ॥ ८२ ॥

देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामन बेचत, मैदा साह ॥ ८३ ॥

कहा कान्ह ते कहनौ, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि ॥ ८४ ॥

तैं चंचल चित हरि कौ, लियौ चुराइ।
याहीं तें दुचती सी, परत लखाइ ॥ ८५ ॥

मी गुज़रद ईं दिलरा, बे दिलदार।
इक इक साअत हमचूँ, साल हज़ार ॥ ८६ ॥

नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोकसु, अचरज कौन ॥ ८७ ॥

समुझि मधुप कोकिलकी, यह रसरीति।
सुनहु श्याम की सजनी, का परतीति ॥ ८८ ॥

नृप जोगी सब जानत, होत बयार।
संदेसन तौ राखत, हरि ब्योहार ॥ ८९ ॥

मोहन जीवन प्यारे, कसि हित कीन।
दरसन ही कों तरफत, ये दृगमीन ॥ ९० ॥

भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस ॥ ९१ ॥

भजि नर हर नारायन, तजि बकवाद।
प्रगट खंभ ते राख्यौ, जिन प्रहलाद ॥ ९२ ॥

गोरज धन-बिच्चि राखत श्रीबृजचन्द।
तिय दामनि जिमि हेरत, प्रभा अमन्द ॥ ९३ ॥

ग़र्क़ अज़ मै शुद आलम, चन्द हज़ार।
बे दिलदार कै गीरद, दिलम क़रार ॥ ९४ ॥

दिलबर ज़द बर जिगरम, तीर निगाह ।
तपादा जाँ मी आयद हरदम आह ॥ ९५ ॥

कै गोयम अहवालम, पेश निगार ।
तनहा नज़र न आयद, दिल लाचार ॥ ९६ ॥

लोग लुगाई हिल मिल, खेलत फाग ।
पर्यौ उड़ावन मोकौं, सब दिन काग ॥ ९७ ॥

मो जिय कौरी सिगरी, ननद जिठानि ।
भई स्यामसों तबतें, तनक पिछानि ॥ ९८ ॥

होत बिकल अनलेखै, सुघर कहाय ।
को सुख पावत सजनो, नेह लगाय ॥ ९९ ॥

अहो सुधाधर प्यारे, नेह निचोर ।
देखन ही कों तरसै, नैन चकोर ॥ १०० ॥

आँखिन देखत सबही, कहत सुधारि ।
पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि ॥ १०१ ॥

पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव ।
पैया परों ननदिया, फेरि कहाव ॥ १०२ ॥

या झर में घर घर में, मदन हिलोर ।
पिय नहिं अपने कर में, करमें खोर ॥ १०३ ॥

---

(१०२) यह बरवा पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कविताकौमुदी में रहीम के नाम से दिया है ।

(१०३) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर में रहीम कृत प्रोषित-पतिका का उदाहरण ।

बालम अस मन मिलयउँ, जस पय पानि ।
हंसनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥ १०४ ॥

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय ।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥ १०५ ॥

---

(१०४) पं० नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित बरवै नायिकाभेद में यह बरवै नहीं दिया है और शिवसिंहसरोज में इसे यशोदानंदन का लिखा है ।

मदनाष्टक

शरद् निशि निशीथे चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई ॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं ।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥ १ ॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखन-वाला चाँदनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला ।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥ २ ॥

दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी ।
मणि-जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा ।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा ॥ ३ ॥

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुलफें ।
अलि कलित बिहारी† आपने जी की कुलफें ॥
सकल शशि-कला को रोशनी-हीन लेखौं ।
अहह ! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं ॥ ४ ॥

जरद् बसन-वाला गुल चमन देखता था ।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था ॥
श्रुतियुग चपला से कुण्डलें झूमते थे ।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे ॥ ५ ॥

---

† पाठान्तर-निहारें

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं ।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं ॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं ।
बिलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखैं ॥ ६ ॥

भुजँग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं ।
नटवर ! तब मोहैं बाँकुरी मान भौंहैं ॥
सुनु सखि ! मृदुबानी बेदुरुस्ती अकिल में ।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में ॥ ७ ॥

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ ।
असल अमृत प्याला क्यौंन मुझको पिलाओ ॥
इति बदति पठानी मनमथांगी विरागी ।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥ ८ ॥

फुटकर छंद तथा पद

(घनाक्षरी)

अति अनियारे मनो सान दे सुधारे,
महा विष के विषारे ये करत परतात हैं ।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हियमें अन्हात हैं ॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये,
तोहू तो 'रहीम' थोरे बिधिना सकात हैं ।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं ॥ १ ॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन,
चाहत धन ... जेती संपदा सराहबी ।
तेरोई कहाय कै रहीम कहे दीनबंधु,
आपनी विपत्ति जाय काके द्वार काहिबी ॥
पेट भर खायो चाहे उद्यम बनायो चाहे,
कुटुम जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबी ।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
ब्रजके बिहारी तो तिहारी कहा साहिबी ॥ २ ॥

बड़ेनसां जान पहिचान कै 'रहीम' काह,
जो पै करतार ही न सुख देनहार है ।

---

(१) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर से

(२) हमारी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक से ।

सीतहर सूरज सों, नेह कियो याही हेत,
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है॥
छीर निधि माँहि धँस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहे।
बड़ो रिझिवार है चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है॥ ३॥
मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।
तन मन रावरे सों मतों के मगन होतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये॥
चित लाग्यो जित जैये तितही रहीम नित,
धाधवे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
में, सो प्रीत बसी तऊ हँसो न कराइये॥ ४॥

---

(१) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधा सागर में यह पाठ है !
बड़ेन सों जान पहिचान तो कहा 'रहीम'
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीतहर सूरज सों प्रीत करी पंकजने,
तऊ कंज-बमन कों मारत तुषार है॥
उदधि के बीच धस्यो, शंकर के सीस बस्यो।
तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहे।
बड़े रिझिवार हैं चकोर दरबार देखो,
सुधाधर यार ए पै चुगत अंगार है॥

(सवैया)

जाति हुती साख गोहन में मन मोहन कों लखि के ललचानो ।
नागरि नारि नई ब्रजकी उनहूँ नंदलाल को रीझिबो जानो ॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो ।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥५॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया ।
गये गेहहिं त्यागि के ताहि समै सु निकारि पिता बनबास दिया ॥
कहे बीच 'रहीम' रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो उनहार हिया ।
बिधियों नसिया रसबार सिया कर बार सिया पिय सारसिया ॥६॥

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो-तो 'रहीम' टरे नहिं टारे ।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे ॥
दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे ।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे ॥७॥

पुतरी अतुरीन कहूं मिलिकै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो ।
हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेटो ॥

---

(६) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर में यह पाठ है—
जिहि कारन बार न लायो कछू गहि संभु सरासन द्वैजु किया ।
न हुतो समयो बनबासहु को पै निकास पिता बनवास दिया ॥
भनि भेद 'रहीम' रह्यो न कछु कहि राखी हुती उनहार हिया ।
विधियों न सिया सुख बार सिया को सु वार सिया पतिवारसिया ॥

(७) नवीन ने यह पाठ दिया है:—
दीनो चहे करतार जिन्हें सुख कौन रहीम सकै तिहि टारे ।
उद्यम कोउ करो न करो धन आवत है बिन ताके हँकारे ॥
दैव हँसे सब आपुस में बिधि के परपंच न कोउ निहारे ।
बालक आनक दुंदुभी के भयो दुंदुभी बाजत आन के द्वारे ॥

सूधे चितै तन हाहा करें हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो ।
ऐसे कठोर सों औ चित चोर सों कौन सी हाय घरी भय भेटों ८

सीखी है ऐसी 'रहीम' कहा इन नैन अनोखे धों नेह की नाँधन ।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राधन ॥
पुन्यन प्यारे सों भेट भई ए पै मौन कुसंग मिल्यो अपराधन ।
स्याम सुधानिधि आननकों भरिये सखि सूधे चितैवे की साधन ९

(दोहा)

धर रहसी रहसी धरम, खपजासी खुरसाण ।
अमर बिसंभर ऊपरै, राखो नहचौ राण ॥ १० ॥
तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होहिं ससि गैन ।
तदपि अँधेरो है सखी, पीउ न देखै नैन ॥ ११ ॥

(पद)

छबि आवन मोहनलाल की ।
काछे काछनि कलित मुरलि कर, पीत पिछौरी साल की ॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो विधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की ।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुतामाल की ॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की ॥ १२ ॥

---

(१०) पाठा०-ध्रम रहसी रहसी धरा खिस जासे खुरसाण ।
अमर विसंभर ऊपरे, नहचौ राखो प्राण ॥

कमल-दल नैननि की उनमानि ।

बसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि ॥
यह दसननि-दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बस-करी मधुरता सुधापगी बतरानि ॥
ढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल·थहरानि ।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥
नुदिन श्रीवृन्दाबन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
ब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥ १३ ॥

शृंगार-सोरठा

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥ १ ॥

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक जातक दूरि, देह दहै बिन देह को ॥ २ ॥

दीपक हिए छिपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ३ ॥

पलटि चली *मुसुकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानों दीनी दीप की ॥ ४ ॥

यक नाही यक पीर, हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी ॥ ५ ॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कधौं शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे ॥ ६ ॥

---

* पाठा०—पुलकि चलि।

रहीम काव्य

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका ।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकां ॥ १ ॥

आपको प्रसन्न करने को मैं नट के समान आपकी इस भूमि पर चौरासी लाख रूप धारण करता रहा। हे परमेश्वर!

---

(१) इसी भाव के दो छप्पय इस प्रकार हैं —

व्योमंबर आकाश नाक नभ श्रुति वसुवपु धर ।
अद्भुत रचि रचि भेष चरित करि करि विचित्र वर ॥
नटवत धरि बहु रूप भूप जगदीश रीझ हित ।
धारयो जग दरबार बार बहु सुनिय सदय चित ॥
जोपै बिलोकि प्रमुदित प्रभू, तो 'बिहारी' वाँछित खचहु ।
रीझे कदापि नहिं होउतो, आवा गमन निषिध करहु ॥

—जानीबिहारी लाल 'बिहारी'

रिझवन हित श्री कृष्ण स्वाँग मैं बहु विधि लायो ।
पुर तुम्हार है अवनि अहंबहु रूप कहायो ॥
गगन बेत खख व्योम वेद वसु स्वाँग दिखाये ।
अन्त रूप यह मनुष रीझ के हेत बनाये ॥
जो रीझे तो दीजिये, ललित रीझ जो चाह सब ।
नाराज भये तो हुकुम कर, स्वांग फेरि मत लाय अब ॥

—अज्ञात

अहिल्याजी पत्थर थीं, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था, पर तीनों को आपने अपने पद में शरण दी। मेरा चित्त भी पत्थर है, आपके पूजन में पशु समान भी हूँ और कर्म भी चांडाल सा है, इसलिए आप मेरा क्यों नहीं उद्धार करते।

यद्यात्रया व्यापकता हताते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या
ध्यानेन बुद्धेः परता परेशं जात्या जताक्षन्तुमिहार्हसित्वं ॥ ४ ॥

मैंने यात्रा से आप की व्यापकता मिटाई, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आप की बुद्धि से अगम्यता और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है, सो हे परमेश्वर! आप इन अपराधों को क्षमा कीजिए।

दृष्टान्त्र विचित्रतां तरुलतां मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर ॥५॥

विचित्र वृक्षलता को देखने के लिए मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृगशावकनयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी। भ्रमर-रूपी धनुष से कटाक्ष के बाण चलाकर उसने मुझे घायल किया। तब मैं सदा के लिये मोह रूपी समुद्र में पड़ गया, इससे हे हृदय धन्वाद दो।

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
तां दृष्ट्वा नवयौवनाशशिमुखी मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥ ६ ॥
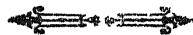
एक दिन संध्या के समय मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृगछौने के नेत्रों के समान आँखवाली खड़ी फूल तोड़ती थी,

उस चंद्रमुखी नवयुवती को देखकर मैं मोह में जा पड़ा। हे प्रिये! सुनो, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता तुम कैसे मिलोगी?

अच्युतचरणतरङ्गिणी शशिशेखरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता ॥ ७ ॥ ×

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेवजी के मस्तक पर मालतीमाला के समान शोभित होने वाली हे गंगे! मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु (जिससे मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूं।)

× दोहा नंबर १ में यही भाव है।

टिप्पणी

दोहावली

१ अच्युत-चरन-तरंगिनी—विष्णु भगवान् के चरणों से निकली हुई गंगाजी।

मालति—मालती, सुगंधित श्वेत पुष्प विशेष।

शिवसिर मालति माल—शिवजी के मस्तक पर मालती की माला के समान शोभायमान।

इंद्व-भाल—महादेवजी, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा शोभित हैं।

भावार्थ—हे गंगे! तुम्हारे प्रताप से भक्तजन मरने पर विष्णु वा महादेव-रूप हो जाते हैं। मुझको तुम महादेव बनाना, न कि विष्णु; जिससे कि मैं तुमको सिर पर धारण करूँ, न कि विष्णु की तरह पैरों से स्पर्श करूँ।

गंगाजी की महिमा का वर्णन है। इस दोहे में 'रहीम' उपनाम नहीं है। स्वरचित संस्कृत श्लोक का भावार्थ रहीम ने इसमें दिया है।

२ नीरस—रसहीन, सारहीन।

३ यथा—जानबूझ अजुगत करे, तासों कहा, बसाय।
जागत ही सोवत रहे, कैसे ताहि जगाय॥ [वृन्द]
समुझि सुरीति कुरीति रत, जागत ही रह सोय।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होय॥ [तुलसी]

४ बड़ेन के जोर—बड़ों का सहारा पाकर।

पचवत—पचाता है। चकोर पक्षी के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह चन्द्रमा पर मुग्ध है और अँगारे खाता है।

५ गुरायसु—(गुरु + आयसु) बड़ों की आज्ञा।

गाढ़—कठिन।

भावार्थ—गुरुजनों की आज्ञा चाहे जैसी कठिन क्यों न हो, यदि वह अनुचित हो तो न माननी चाहिए। रामजी पिता का वचन मान वन को गये और भरतजी ने गुरुजनों की आज्ञा न मान कर राज न लिया। फिर भी भरतजी का यश रामजी के यश से अधिक है।

६ गाढ़े—कठिन।

७ अमरबेलि—बिना पत्ती और मूल की लता विशेष, जो वृक्षों पर फैल जाती है।

८ रिस—क्रोध।

गाँस—गाँठ, मिलावट, मनोमालिन्य।

९ अरज गरज—खुशामद।

११ ढिग—पास, समीप।

१३ बरै—वट वृक्ष।

बरोह—वट वृक्ष की शाखा, जो भूमि में धँस जाती है और जड़ों का काम देती है।

१४ उरग—सर्प।

तुरंग—घोड़ा।

यथा—उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहत नित, इनहिं न पलटत बार॥ [तुलसी]

१५ अथवत—अस्त होता है। देखिये दोहा नं० १५८।

१६ अघाय—पूर्ण रीति से।

यही दोहा 'कबीर-वचनावली' में (नं० ७६८) भी है। 'रहिमन' के स्थान में 'जो तू' है।

१८ देखो दोहा नं० ९३।

१९ भावार्थ—जिन आँखों से भगवान के दर्शन हुए हैं और जिनमें

उनका वास है, उन आँखों में किरकिरा अंजन कैसे लगाया जाय। सुरमा भी नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि उनको सलाई लग जाने का भय है।

२० अंड—एरंड का वृक्ष।

बौड़—बौड़ाना, पागल होना, भ्रम में पड़ना!

भावार्थ—रे एरंड! अपने चिकने पत्तों को देखकर धोखे में न आ! तू अपने को तरुवर मत समझ! तरुवर दूसरे ही होते हैं, जो कुल्हाड़ी की चोट और हाथियों के धक्के सहते हैं।

२१ दाव—अग्नि।

२२—स्वाति नक्षत्र में वर्षा की बूंद केले में पड़े तो कपूर बनता है, सीप में गिरे तो मोती और सर्प के मुख में गिरे तो बिष बनता है—ऐसा कवि कहते हैं।

यथा—सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत के फल सूर॥ [सूर]

देखो दोहा नं० १४७

२३ कमला—(१) लक्ष्मी, (२) धन।

पुरुष पुरातन—(१) विष्णु, (२) वृद्ध पुरुष।

२४ लखत—दृष्टिपात करते हैं।

प्रभु की—लक्ष्मी; विष्णु भगवान की स्त्री।

फजीहत—दुर्दशा; बदनामी।

२५ निपुनई—चतुराई।

हुजूर—प्रत्यक्ष; सम्मुख।

भावार्थ—जो मनुष्य बिना किसी गुण के होते, निपुण पुरुषों के सम्मुख, अपनी डींग मारता है, वह मानो वृक्ष पर चढ़कर अपनी मूर्खता की घोषणा करता है।

२६. यथा— अखियाँ अनजान भई।

यों भूलीं ज्यों चोर भरे घर चोरी निधन लई ।
बदलत चोर भयो पछतानी, कर तें छाँड़ दई ॥ [सूर]

२७ द्युति—द्युति, प्रकाश ।

दुरै—छिपाया जाय ।

भावार्थ—एक ही दीपक से सब ओर प्रकाश फैल जाता है, तो फिर शरीर में जहाँ नेत्र-रूपी दो दीपक चमक रहे हैं, वहाँ प्रेम कैसे गुप्त रह सकता है ।

यथा—'प्रेम दुरायो ना दुरै नैना देहिं बताय' [बैरीसाल]

एक दीप ते गेह की, प्रगट सबै निधि होय ।
मन को नेह कहाँ छिपे, जहँ दृग दीपक दोय ॥

(दोहासारसंग्रह सं० १७२०)

३० भावार्थ—प्रीति जगत से यह कह कर चली गई है, कि रहीम अब तुझे नीच पुरुषों में रहकर स्वार्थ ही स्वार्थ दिखाई देगा । इस दोहे के और भी अर्थ हो सकते हैं ।

३१ संपति सगे—धन के साथी ।

विपति-कसौटी जे कसे—विपत्ति में जिनकी परीक्षा हो चुकी है, जैसे सुवर्ण की परीक्षा कसौटी पर घिस कर होती है ।

३२ केतिक—कितनी ।

गई विहाय—बीत गई ।

३३ भावार्थ—बेर और केले की मित्रता कैसे निभ सकती है । बेर तो अपने रस में मस्त होकर झूमते हैं और केले के पत्ते काँटों से छिद जाते हैं ।

यथा—'कहियो जाय सूर के प्रभु सों, केर पास ज्यों बेर' [सूर]

दुष्ट निकट बसिये नहीं, बस न कीजिये बात ।
कदली बेर प्रसंग ते, छिदे कंटकन पात ॥ [वृन्द]

३५ खैंचित बाय—श्वास लेता है । देखो दो० नं० ८६ ।

कौन भरोसा देह का, छाँड़हु जतन उपाय।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाय ॥ [उसमान]

३६ भावार्थ—अपना मतलब निकल आने पर मनुष्य का व्यवहार कैसा बदल जाता है ! जिस मौर को विवाह के समय सिर पर पहिनते हैं, कार्य होने के बाद उसी को नदी में बहा देते हैं।

३८ कलप वृच्छ—स्वर्ग का कल्पवृक्ष, जो मनचाहा पदार्थ देता है।

यह दोहा शिवसिंहसरोज तथा अन्य ग्रन्थों में 'अहमद' के नाम से भी मिलता है।

३६ कामरी—कम्बल।

पामड़ी—मखमल वा बनात का सा कीमती कपड़ा।

जाड़—जाड़ा।

४० कुछ मिलता-जुलता यह भी एक दोहा है—

क्यों बसिये क्यों निबहिये, नीति नेह पुर नाहिं।
लगालगी लोयन करें, नाहक मन बँध जाहिं ॥

४१ गैर—शत्रुता। यह दोहा वृन्द-सतसई में भी है। 'रहिमन' के स्थान में "जैसे" है।

४२ भावार्थ—रहीम कहता है कि कोई किसी के द्वार पर जाकर पछताय नहीं, क्योंकि धनी के पास तो सभी जाते हैं और विपत्ति कहाँ नहीं ले जाती।

४५ करुप मुख—कटुभाषी।

सजाय—दण्ड; सज़ा।

विशेष—नमक के संयोग से खीरे का कड़वापन जाता रहता है।

४६ बंसदिया—आकाश-दीप जो कार्तिक मास में छत पर बाँस से लटकाते हैं।

भावार्थ—आज कल मोहन ने आकाश दीप की चाक सीखली है। जैसे आकाश-दीप डोरी खींचने पर ऊपर चढ़ जाता है और ढीली करने

से पास आ जाता है, वैसे ही मोहन बुलाने पर दूर भागते हैं और उदासीनता दिखाने पर स्वयं आ जाते हैं।

कहा जाता है कि रहीम ने यह दोहा उस समय कहा था, जब श्रीनाथजी स्वयं प्रसाद लेकर दर्शन देने आये थे।

४७ खैर—(फारसी) कुशल; ख़ैर।

खून—नरहत्या।

इस दोहे का पाठांतर निम्नलिखित भी मिलता है:—

इश्क मुश्क खाँसी खुशक बैर प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबे जानत सकल जहान॥

५० गुन—(१) गुण (२) रस्सी।

सलिल—जल।

भावार्थ—जब रस्सी द्वारा कुएँ से जल निकल सकता है तो अपने गुणों द्वारा दूसरे के मन की बात, जो कुएँ की बराबर गहरा नहीं होता, क्यों नहीं जानी जा सकती।

५१ गुरुता—बड़ाई; बड़प्पन।

फबै—शोभा को प्राप्त होना।

बतौरी—रसौली; रोग विशेष जिसमें माँस-पिण्ड की गाँठ बन जाती है।

५३ चारा—भोजन।

छाला—चमड़ी; नरतनु। देखो दो नं० १६६।

यथा—को न याति वशं लोके मुखं पिंडेन पूर्यते।
मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरं ध्वनिम्॥

५४ कहा जाता है कि जब रहीम स्वयं निर्धन हो गये थे और एक याचक की मदद करने में असमर्थ थे, तब सिफारिश में इस दोहे को लिखकर याचक के हाथ रीवाँ-नरेश के यहाँ भेजा था। राजा ने उस व्यक्ति को एक लाख रुपया दे दिया।

५५ छिमा—क्षमा ।

उतपात—अपराध ।

भृगु मारी लात—ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है, इसकी परीक्षा करने भृगुजी निकले । वे पहिले ब्रह्मा के पास और फिर शिव के पास गये । ये दोनों तो भृगुजी के व्यवहार से रुष्ट हो गये । विष्णु भगवान सो रहे थे, सो भृगुजी ने पहुँचते ही उनकी छाती पर लात मारी । भगवान अप्रसन्न होने के बदले भृगुजी के चरण दबाने लगे, कि कठोर छाती से पैर में कहीं चोट तो नहीं आगई । विष्णु भगवान् के वक्षस्थल पर चरण चिन्ह भृगुजी का ही है ।

५६ रेख—पत्थर की लकीर, निश्चय ।

सहसन को—हजारों रुपये का ।

हय—घोड़ा ।

दमरी—दस कौड़ी ।

मेख—खूंटा ।

५७ सुख दुःख मिलन अगोट—मेल में सुख और अनैक्यता में दुःख (यथासंख्या) ।

अगोट—भिन्नता; अनैक्यता; (संस्कृत गोष्ठी)

भावार्थ—जब तक संसार में जीवन है, मेल में सुख है और विलग होने में दुःख है जैसे चौपड़ के खेल में गोटियों का जुग नहीं पिटता और जुग फूटने से दोनों गोटियाँ पिट सकती हैं ।

यथा—फूटे ते नरद उड़िजात बाजी चौसर की,
आपुस के फूटे कहो कौन को भलो भयो—[गंग]

५८ वित्त—धन ।

अंबुज—कमल, जलज, अंबु अर्थात् जल से उत्पन्न होनेवाला ।

भावार्थ—वही सूर्य जो कमलों को खिलाता है, सरोवर में पानी

सूखने पर कमलों को सुखा डालता है। मित्र भी तभी तक हितू हैं जब तक अपने पास पैसा है।

यथा— कुसमय मीत काको कवन।

कमल को रवि परम हित है, कहत श्रुति अस बयन।

घटत वारिध भयो दारुण करत कमलन दहन॥ [सूर]

भावार्थ—हमारे शरीर को कर्म वा प्रारब्ध कठपुतली के समान नचाता है। सब काम हमारे हाथ से ही होते प्रतीत होते हैं, फिर भी हमारे हाथ में (वश में) कुछ नहीं है। देखो दो० नं० १११

५९ छीर—दूध।

जल और दूध के मेल का उदाहरण संस्कृत और हिन्दी काव्य में अति प्रसिद्ध है। जल जब दूध में मिलता है तो दूध उसको अपना रूप-रंग देकर एक रस बना लेता है। जब दूध गरम किया जाता है तो पानी मित्र के नाते पहिले स्वयं जलता है और दूध की रक्षा करता है। सब जल जल जाता है तो मित्र के वियोग से दूध उफन कर अग्नि में गिरने जाता है। परन्तु ज्यों ही जल के छींटे दूध को मिले कि उफान शान्त हो जाता है। इसी भाव के अंश पर इस दोहे की रचना रहीम ने की है।

यथा—तोय मोल में देत हों छीरहिं सरिस बढ़ाई।

आँच न लागन देत वह, आप पहिल जरि जाई॥ [रसनिधि]

६० गाँठ—ईख की गाँठ और मनोमालिन्य।

जोय—जानता है।

मड़पतर की गाँठ—विवाह-मंडपमें वरवधुको परस्पर बाँधने की गाँठ।

६१ छोह—स्नेह; प्रेम।

यथा—प्रेमी प्रीत न छाँड़हीं, होत न प्रनते हीन।

मरे परेहू उदर में, ज्यों जल चाहत मीन॥ [वृन्द]

मीन काट जल धोइए, खाये अधिक पियास ।
तुलसी प्रीत सराहिये, मुये मीत की आस ॥ [तुलसी]

६२ दुरयो—छिपाया गया । देखो दो० नं० ७९ ।

६४ बापुरो—बेचारा; गरीब । श्रीकृष्ण और सखा सुदामा की कथा प्रसिद्ध है ।

६५ नखत—नक्षत्र ।

कूबरो—वक्र, टेढ़ा ।

भावार्थ—जिसको विधाता ने बड़ाई दी उसमें कोई क्या दोष निकाल सकता है । चन्द्रमा पतला और टेढ़ा क्यों न हो, फिर भी सब नक्षत्रों से अधिक प्रकाशवान है ।

यथा—होंहि बड़े लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत ते बाढ़ि ॥ [तुलसी]

६६ दाहे—जलाये हुए ।

भावार्थ—एक बार पदार्थ जो जल कर राख हो गया, वह फिर नहीं जल सकता । परन्तु जो प्रेम से दग्ध हुए हैं उनके हृदय बुझकर भी सुलग उठते हैं । यही प्रेमाग्नि की विचित्रता है । यह दोहा 'दोहासार-संग्रह में 'अहमद' के नामसे इस प्रकार दिया हुआ है—

अहमद दाहे प्रेम के, बूझि बूझि सिलगाहिं ।
जो सिलगे ते फिर बुझे, बुझे ते सिलगे नाहिं ॥

६९ अँक—कलंक; अपवाद ।

७० अपत—[१] अप्रतिष्ठित [२] बिना पत्ते का ।

करील—वृक्ष विशेष जिसका फल टेंटी कहलाता है ।

कदली—केला ।

सुपत—[१] प्रतिष्ठित [२] अच्छे पत्तेवाला ।

७१ पेट लागि—पेट के लिए ।

इस दोहे में महाभारत में वर्णित पाण्डवों के अज्ञातवास के समय भीमका विराट राजा के यहाँ रसोइये का काम करनेकी कथा पर लक्ष्य है।

७३ मरजाद—मर्यादा; हद।

७४ प्रकृति—स्वभाव।

भुजंग—सर्प।

यथा—सुजन सुसंगति संगते, सज्जनता न तजंत।
ज्यौ भुजंगन संग तउ, चन्दन विष न धरंत॥ [बृन्द]

७५ टेढ़ो टेढ़ो जाय—प्यादे की चाल सीधी होती है, परन्तु जब प्यादा फर्जी या वज़ीर बन जाता है तो उसकी चाल टेढ़ी हो जाती है।

७६ भावार्थ—यदि श्रीकृष्ण को ब्रज की यही दशा करनी थी, अर्थात् छोड़ जाना था, तो फिर गिरवर धारण कर इन्द्र के कोप से उसकी रक्षा काहे को की थी।

७७ बारे—[१] बाल्यावस्था [२] जलाना (दीपक के लिये)।

७८ काया—शरीर।

बढ़े—[१] बड़े होने पर [२] दीपक के लिये बुझने पर।

८० तिय राखत पट ओट—स्त्री अंचल की आड़ में दीपक को पवन से सुरक्षित रखती है। देखो दो० नं० ६२।

८१ आँसु गारिबो—आँसू गिराना।

खोस—व्यर्थ।

८२ भावार्थ—यदि प्रभु की इच्छा अपने अधीन होती तो फिर अहंकार वश कौन किस को गिनता?

८३ विषया—विषय वासना।

भावार्थ—जिन विषय-वासनाओं को संत जनों ने छोड़ दिया है उन्हीं के पीछे मूढ़ लगे रहते हैं जैसे बमन किये हुए अन्न को कुत्ता प्रेम से खाता है। त्यक्त विषय-वासना भी वमन के समान ही है।

८४ गात—शरीर।

८५ टूटे—रूठे हुए।

८६ ओहि ओर—ईश्वर की ओर।

भावार्थ—शरीर चाहे कर्मों में फँसा हुआ हो परन्तु मन को ईश्वर में लगाना चाहिये जैसे बहाव के विरुद्ध नाव को रस्सी से खींचते हैं।

८७ दीबो होय न धीम—दान करना बन्द न हो।

कुचित—अनुचित।

८८ सँचहि—संचित करते हैं।

यथा—पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
पयोमुचाम्भः कुचिदस्ति पास्यं परोपकाराय सतां विभूतयः॥

८९ एती—इतनी।

खैंचत बाय—श्वास लेता है।

खस—घास। देखो दोहा नं० ३५।

९० चारु—सुन्दर।

चकोर—पक्षी विशेष, जिसके संबंध में कवियों की कल्पना है कि वह चन्द्रमा पर मुग्ध है, उसी को देखता रहता है और अग्नि खाता है।

भावार्थ—जैसे चकोर चन्द्रमा की ओर सदा दृष्टि लगाये रहता है वैसे ही रहीम ने अपने मन-रूपी चकोर को कृष्णरूपी चन्द्रमा से लगा रखा है।

पावक चुगत चकोर नित, भस्म करन को अंग।
ह्वै भभूत शिव सिर चढ़ूँ, तो पाऊँ ससि संग॥ [दोहा सार०]
याके बल वह लेत है, पावक चिनगी खाइ।
चंदहि जो जारन लगे, तो चकोर कित जाइ॥ [रसनिधि]

९१ थोथे—खाली; जलहीन।

पाछिली बात—बीते हुए सुखी दिनों की बात।

९२ भावार्थ—श्रीकृष्ण ने गिरवर को धारण ही भर किया था फिर भी उनका नाम गिरिधर हो गया। और हनुमानजी तो पहाड़ उठा कर लंका

ले गये तो भी उनको यह पदवी न मिली। बड़े की प्रशंसा सहज में हो जाती है, और छोटों की नहीं होती।

९३ दादुर—मेंढ़क।

सरवर—बराबरी।

भावार्थ—मेंढ़क, मोर, किसान, सब का जी मेघ में लगा रहता है कि वृष्टि हो और चातक को भी मेघ की ही रटना लगी रहती है, परन्तु चातक की बराबरी इनमें से कोई भी नहीं कर सकता। चातक को तो मेघ ही की रटन लगी रहती है।

९४ दुःख में ही तो ईश्वर याद आता है, विपत्ति ही भगवान की ओर मनको मोड़ती है।

९५ इस दोहे के उत्तरार्ध का पाठ निम्नलिखित भी मिलता है 'रहिमन भली सो दीनता नरो सो देवता होय' जिसका यह अर्थ होता है कि देवता सबको देखते हैं किन्तु उनको कोई नहीं देखता। दीनता के कारण दीन मनुष्य की भी यही दशा हो जाती है। अतएव दीनता में मनुष्य देवता हो जाता है।

९६ नट-कुण्डली—कलाबाजी दिखाने का चक्र, जिसमें से शरीर सिकोड़ कर नट कूद जाता है। दोहे की प्रशंसा में 'बिहारी' का वाक्य याद आता है—

'देखत को छोटो लगे, घाव करे गंभीर'।

९७ भावार्थ—रहीम की दुर्दशा सुनकर लोग तो हँसी करते हैं और रहीम का धीरज छूट जाता है। परन्तु भगवान् ही एक ऐसे हैं जो दुःख सुनते हैं और सुन कर उपकार भी करते हैं।

९८ दुरथल—बुरा स्थान।

घूर—घूरा; कूड़ा जमा करने का स्थान वा जमा किया हुआ कसवार।

९९ हित—प्रीति।

भावार्थ—जब बुरे दिन आते हैं तो जान पहिचान के लोग भी

भूल जाते हैं। यदि हित की हानि न हो तो धन जाने का दुःख न हो। परन्तु धन जाने पर लोग भूल जाते हैं, यही दुःख की बात है।

१०० यह दोहा रहीम ने कवि गंग के निम्नलिखित दोहे के उत्तर में भेजा था—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

१०१ कौआ और कोयल दोनों काले रंग के होते हैं केवल बोली का भेद है—यथा—भले बुरे सब एक से जौं लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि॥ [वृन्द]

१०३ गाढ़े दिन को मित्त—बुरे दिनों में काम आनेवाला मित्र।

१०४ अनत—अन्य स्थान।

भाय—रुचि।

१०५ पंक—कीच; यहाँ गड़ही या तालाव से मतलबहै।

उदधि—समुद्र।

यथा—अमित कथा है ही भरे, जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जो न तुम, आवे प्यासन काम॥ [वृन्द]

१०६ देखो दोहा नं० ६८

१०७ हाथी की टेव है कि सूँड़ से धूल उठाकर अपने शरीर पर डालता है। किसी ने इसका कारण पूछा, तो कवि ने कहा कि श्रीराम के चरण की उस रज को खोजता है, जिसके स्पर्श से अहिल्या का उद्धार हुआ था। अहिल्या शाप से शिला हो गई थी और फिर श्रीराम ने उसका उद्धार किया था। यह कथा रामायण की प्रसिद्ध है।

१०८ मृगया—शिकार।

१०९ नात—नातेदारी।

नेह—स्नेह, प्रेम।

गड़ही को पानि—छोटे गड़े का पानी।

भावार्थ—जलाशय के जल की भाँति संबंधियों का प्रेम भी दूर का ही अच्छा होता है, निकट रहने पर उसकी क़दर कम हो जाती है।

११० नाद रीझि...—मृग को नाद प्रिय है। पकड़ने वाले उसको बाजा सुना रिझा कर पकड़ लेते हैं।

रीझेहु—प्रसन्न होकर भी।

१११ क्रिया—कर्म।

सिधि—सिद्धि, फल।

भावी—भविष्य, विधाता।

भावार्थ—कर्म करना अपने हाथ में है परन्तु उसका फल दैवाधीन है। जैसे चौपड़ के खेल में पासा डालना अपने आधीन है परंतु दाँव क्या आवेगा यह अपने हाथ में नहीं है वह दैवाधीन ही है।

११२ सलोने—नमकीन।

अधर—होठ।

मधु—मीठा।

११३ पन्नग-बेलि—नागबेलि, पान की लता।

रिति—रीति, तरह।

सम—बराबर, एकसी।

दहियान—जलाया गया, तपा हुआ।

हिम—पाला, बरफ़। पान की बेल तथा पतिव्रता स्त्री के प्रेम में यह अपूर्वता है कि बेल शीत पूर्ण पाले से जल जाती है और स्त्री पति की दूरी के कारण विरह से जलती है।

११४ परि रहिबो—पड़ा रहना।

बामन—वामन अवतार, जिसको धारण कर भगवान ने तीन चरण धरती माँगकर राजा बलि को छला था।

११५ पसारि—फैलाकर।

पत्र—यहाँ इसका अर्थ पखुरी है, न कि पत्ते।

झँपहि–छिपा लेता है।

पितहिं–पिता को, कमल का पिता जल।

सकुचि–पखुरी बन्दकर।

कुल कमल–कमला का वंश अर्थात् जल और फूल।

भावार्थ—कमल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और रात को वा चाँदनी में संकुचित हो जाता है। अतएव सूर्य कमल का मित्र है और चन्द्रमा उसका शत्रु है परन्तु वही सूर्य जो कमल को खिलाता है, तालाब के पानी (कमल के पिता) को सुखा देता है। सूर्यताप से जल की रक्षा कमल अपने पखुरियों को फैलाकर अथवा विकसित होकर करता है और रात्रि को जब चन्द्रमा का उदय होता है और शीतल चाँदनी निकलती है, जो पानी की हितु है और कमल की शत्रु है, उस समय कमल अपनी पखुरी समेट लेता है और जल पर चन्द्रकिरण अच्छी तरह पड़ने देता है। जल और जलज का ऐसा परस्पर प्रेम होने से उनके वंश का सूर्य, चन्द्र में से किसको शत्रु कहा जाय और किसको मित्र कहा जाय।

११६ पात—पत्र वा पत्ता।

बरी—ऊर्द की दाल को पीसकर बनाई हुई बड़ी।

बरैगो—प्रशंसा करेगा।

यथा—पात पात को सींचनो, बरी बरी को लौन,
    'तुलसी' खोटे चतुरपन, कलिदुह के कहु कौन।

११७ पावस—वर्षा ऋतु।

साधे मौन—चुप हो गई।

दादुर—मेंढक।

वक्ता—बोलने वाले।

यथा—तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
    अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहैं कौन॥

११८ देवरा—भूत प्रेत ।

तिय—स्त्री ।

पड़ो—पड़ा, भैंस का बच्चा ।

११६ पर छबि—अन्य की सूरत ।

पथिक—राहगीर, मुसाफ़िर यात्री ।

१२० फरजी—फ़र्जी या वजीर का मौहरा । साह-मीरज़ा बादशाह का मौहरा शतरंज के खेल का ।

गति टेढ़ी—वजीर की टेढ़ी चाल होती है ।

तासीर—असर

१२१ माया—धन, ऐश्वर्य ।

१२२ उर—हृदय, मन ।

हरि—भगवान् ।

हाथी—जिसका भगवान ने ग्राह से उद्धार किया था ।

१२३ हहरि कै—गिड़गिड़ा कर । हाथी के दाँत बाहर निकले रहते हैं उस पर कवि की उक्ति है । गिड़ गिड़ा कर दाँत दिखाना दीनता का लक्षण है ।

यथा—बड़े पेट को दुःख कर, मन संतोष 'निहाल'
दाँत काढ़ हाथी न दे, बड़े पेट के हाल—'गुण गंजनामा'

१२४ राइ—मसाले का छोटा दाना ।

भावार्थ—बड़े कभी छोटे नहीं होते, छोटे इतरा कर चाहे कभी बढ़ भी जाँय । जैसे राई समान छोटा बीज करौंदा हो जाता है परन्तु कटहर कभी राई के समान छोटा नहीं होता ।

१२५ बड़ाई—आत्म प्रशंसा ।

बड़ो बोल—अपनी बड़ाई । १२६ देखो दोहा नं० २९ ।

१२७ सोस—सोच, अफसोस । रावण के पड़ोस में था इसलिये समुद्र बांधा गया ।

यथा—दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध ते, बंधन लह्यो जलेस ॥ [वृन्द]

१२८ मुक्तावली नामक ग्रंथ से संग्रहीत।

१३० नभ—आकाश। विपत्ति में 'सञ्चितोऽपि विनश्यति'।

१३१ तजन—त्याग।

विलग—अलग।

१३२ धर—धड़, शरीर।

परि—गिरकर।—

खेत—लड़ाई का मैदान। इस दोहेमें रहीम का उपनाम नहीं है।

भावार्थ—युद्ध में सिर कटके गिरता है तो कुछ देर तक वह फड़कता रहता है। इसी का नाम हँसना है। सिर कटके गिरा तो हँसा कि अब उसको पेट के लिये सबके सामने झुकना न पड़ेगा।

१३३ भार—भाड़ और बोझा, (अहंकार पापादि का।)

यथा—यकिज रहे उरवार, जिन सिर भारी भार थे।
'अहमद' उतरे पार, झार झबोके भार में [गुलगंजनामा]

१३४ भावी—होनहार, प्रारब्ध।

दही—मेटा, जलाया।

१३५ उनमान—उन्मान, परिमाण, तौल। बरु—वर, पति।

संभु—शंभु, महादेवजी।

अजीम—बड़ा।

भावार्थ—यद्यपि पार्वतीजी का विवाह महादेवजी से हुआ फिर भी वह वंध्या ही रहीं। कवि परिपाटी में पार्वती को वंध्या ही कहा गया है। यथा—

सीता पायो दुःख और पारवती बंध्या तन,
नृग ने नरक पायो वैस्या गति पाई है।
× × × × × ×
हाल ठकुराइस में बोलिबो अचंभो यह,
ईश्वर के घर ते अपेलि चलि आई है॥

१३६ पाखान—पाषाण, पत्थर।

अररानी—पत्थर गिरने का शब्द।

भावार्थ—गिरे हुए पत्थर को सोच है कि उनमें से अब कौन सा पत्थर कहाँ काम में आवेगा अर्थात् सब अलग हो जायँगे।

१३७ गनत—गिनते हैं।

भावार्थ—गुणवान अपने राजा को छोटा समझते हैं और राजा गुणियों को तुच्छ दृष्टि से देखता है। यथार्थ में तो कोई एक दूसरे से बड़ा छोटा नहीं है। सब समान हैं, भगवान के रूप हैं।

१३८ दोहासार संग्रह में यह दोहा शंकर कवि के नाम से दिया है। उसका पाठ इस प्रकार है।

> मथत मथत माखन रह्यो, मह्यो गयो महराय।
> 'शंकर' सो बहु मोल जो, भीर परे ठहराय॥

१३९ मनसिज—कामदेव।

फल—यहाँ स्तन से आशय है।

फूल—(१) कमल की माला (२) काम जनित आनन्द।

यथा—रोमावलि कोमल लता, लागी तियके गात।
कुचफल देखत पीय के, अँग अँग फूलत जात॥
[जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह।]

१४० दिवान—दीवान, मंत्री।

भावार्थ—जिस प्रकार अच्छे राज्य में राजा मंत्री के कथनानुसार कार्य करता है उसी प्रकार मन भी उसी के साथ लग जाता है, जिसका नेत्र आदर करते हैं।

१४१ महि—धरती।

नभ—आकाश।

सरपंजर किये—तीरों से अच्छादित कर दिये।

अवसेष—अतुल।

वैराट—विराट, एक राजा का नाम।

भावार्थ—जिस अर्जुन ने अपने अतुल पराक्रम से पृथ्वी और आकाश को अपने तीरों से आच्छादित कर दिया था, उसी अर्जुन को एक दिन विराट राजा के घर स्त्री का वेष धारण कर रहना पड़ा था।

विशेष—श्रीकृष्ण की आज्ञा से अग्नि ने खांडव वन को जला दिया था उस समय उसकी इन्द्र से रक्षा करने के लिये पृथ्वी से स्वर्ग तक अर्जुन ने तीरों का पिंजरा बना डाला था।

और जब पाण्डवों को अज्ञातवास करना पड़ा था, तो अर्जुन स्त्री के वेष में रहकर राजा विराट की कन्या को नृत्य-कला सिखलाते थे।

१४२ सफरिन—छोटी मछलियाँ।

सर—सरोवर।

बक-बालक—बगुले के बच्चे।

१४३ संभु और जगदीस—जब देवताओं और दैत्यों ने समुद्र मन्थन किया तो चौदह रत्न निकाले। सब से पहिले विष निकला। उस हलाहल से समस्त पृथ्वी जलने लगी। सब ने मिलकर शंभु भगवान की विनती की। उन्होंने जगत की रक्षा के निमित्त विष का पान कर उसे कंठ में धारण कर लिया। इसीलिये वे जगदीश कहलाये।

राहु कटायो सीस—जब समुद्र में से अमृत निकला तो देव दानव झगड़ने लगे। भगवान ने मोहिनी रूप धारण कर, सब को पंक्ति में बिठला कर पहिले देवताओं को अमृत बाँटा। दैत्य बाट ही देखते रह गये। राहु ने देवता का रूप धर कर धोखा दे अमृत-पान कर लिया। भगवान को जब इसका पता लगा तब उन्होंने तुरंत सुदर्शन से उसका सिर काट दिया। परन्तु उसका रुंड राहु और सिर केतु अमर हो गए।

१४४ पाठान्तर—माह मास को भिनुसरा।

१४५ कितो—कितना ही।

बढ़िकाम—महत्वपूर्ण काम।

बसुधा—पृथ्वी।

बावन—बामनावतार जो शरीर से बहुत नाटा था। विष्णु भगवान ने वामन का अवतार ले दैत्यराज बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगा और फिर विराट रूप धर कर पृथ्वी और त्रैलोक्य नाप लिये।

१४६ **मुकरि**—बात से नट जाना।

माँगत आगे सुख लह्यो—याचना करने के पूर्व ही राज्य मिल गया। श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को, लंका का राज्य, बिना उसके माँगे, दे दिया था।

१४७ **कर**—करने वाला।

जल—स्वाँति नक्षत्र की वर्षा।

व्याल—सर्प। देखो दोहा नं० २२।

१४८ **मुनि नारी**—गौतम की स्त्री अहिल्या।

पाषान—पत्थर।

ही—थी।

गुह—जो रामचन्द्र जी को वन में मिला था।

मातंग—चाण्डाल।

तारे—तार दिये।

तीनों मेरे अंग—मुझ में तीनों के अवगुण विद्यमान हैं। रहीम कृत संस्कृत श्लोक देखिए उसीका भावार्थ इस दोहे में है।

१४९ **कचन**—बाल।

१५० **मन्दन**—नीच पुरुष।

सराहि—शान्त होना, ठंढा होना।

मरहा—जंगल का भूत; जो पुरुष बाघ द्वारा मारा जाता है उसके लिये एक चबूतरा बना कर उसकी आत्मा की पूजा की जाती है कारण कि उसकी आत्मा दूसरे जन्म में मनुष्य भक्षी बाघ का रूप धारण कर अधिक उत्पात मचाती है।

भावार्थ—नीच पुरुषों के मरने पर भी उनके अवगुणों का समूह शान्त नहीं होता है। जिस प्रकार कि बाघ द्वारा मारे गये पुरुष की आत्मा भी मनुष्य भक्षी बाघ का रूप धारण कर अधिक उत्पात मचाती है।

१५१ अवनि—पृथ्वी।

कूपवंत—जल का गहरा कुण्ड।

सरिताल—झील।

मनसा—मंशा; इच्छा।

मराल—हंस।

यथा—यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रसताल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल॥ [तुलसी]

१५२ प्रानन बाजी राखिए—प्राण तक दाँव पर लगा दीजिए अर्थात् प्राण देने को भी तैयार रहिए।

१५४ नवा—झुका हुआ, नम्र, विनीत।

नए ते—झुकने से।

भावार्थ—चीता झुक कर आक्रमण के लिए उछलता है। चोर वा दुष्ट मनुष्य विश्वासघात करने के लिए मीठा बोलते हैं। और कमान झुकने पर ही तीर फेंकती है। इन तीनों का झुकना अनर्थकारी है।

यथा—सज्जन नवते जनि गनहु, जो उर सुद्ध न होइ।
चीता चोर कमान सों, नवहिं आपनी गोइ॥ [गुणगंजनामा]
नवन नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥
[तुलसी]

१५५ भावार्थ—रहीम कहते हैं कि मेरा मन जल कर भस्म हो गया प्रतीत होता है कारण कि वह जिससे लगाया जाता है वही रूखा हो जाता है।

१५६ दुवौ—दोनों।

१५७ तुरंग—घोड़ा।

दाग—घुड़सवार सेना में सवार का नंबर घोड़े के शरीर पर गरम लोहे से दाग दिया जाता है। कहते हैं कि यह प्रथा राजा टोडरमल ने अकबर के राज्य में चलाई थी।

१५८ साँति—शान्ति।

उवत—उदय होता है।

अथवत—डूबता है। देखो दोहा नं० १५।

१५९ जननी जठर—माँ के पेट में।

१६० कानि—चाल, रीति वा मर्यादा।

सैंजन— सहजनी, वृक्ष विशेष जिसके फल की तरकारी बनती है।

१६१ गोत—गोत्र, वंश, जाति।

भावार्थ—मृग चन्द्रमा के रथ को खींचते हैं, इसीलिये पृथ्वी के मृग भी उछलते हैं, और बाराह (भगवान्) हिरण्याक्ष को मारकर पाताल से पृथ्वी लाये थे इसीलिए सूअर धरती खोदते हैं। वंश और जाति के अनुसार गुण, कर्म स्वभाव होते हैं।

१६२ अनखाए—बिना भोजन किये हुए।

अनखाय—अकुलाय।

१६३ बिरछ—वृक्ष।

सेंहुड़—पौधा विशेष, जिसके पत्ते कुछ लम्बे होते हैं। इसका रस दवाई के रूप में बच्चों को दिया जाता है।

कुंज—कटीला वृक्ष।

करीर—करील।

१६४ भावार्थ—वधिक के वाण से आहत मृग का रक्त घातक हो जाता है। रक्त-विन्दुओं से बधिकों को मृग के भागने के मार्ग का पता चल जाता है।

यथा—कुसमय मीत काको कवन।
व्याध मिरगा बाण बेध्यौ, कोटि कानन गवन॥

अंग श्रोणित भयो बैरी, खोज दीनो तवन ॥ [सूरदास]

१६५ गेह—घर ।

१६६ बाजत है—मृदंग की ओर लक्ष्य है। देखो दोहा नंबर ५३

१६७ सभा विलासमें यह दोहा सम्मन कविके नामसे दिया गया है।

भावार्थ—एक दिन वह था जब हृदय से हृदय मिलाते समय गले का हार नहीं सुहाता था और अब हवा ऐसी बदली कि दोनों के बीच पहाड़ों का अन्तर हो गया।

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥ हनुमन्नाटक

१६८ करिया —काला । देखो सोरठा नं० २७१ ।

१६९ देखो दोहा नं० १८२ । भाव-सादृश्य है ।

यथा—(१) हितहू भलो न नीच को, नाहिन भलो अहेत ।
चाट अपावन तन करे, काटि स्वान दुःख देत ॥ [बृन्द]
(२) बिरचै काटे पाँव को, राँचे चाटै मुक्ख ।
'वाजिद' स्वान की दोसती, दुहू परे हैं दुक्ख ॥ [गुणगंज नामा]

१७० भावार्थ—चिता तो मृतक को जलाती है, परन्तु चिन्ता उससे भी बढ़कर है जीते जी जलाती है।

यथा—चिताचिन्ता समाख्याता विन्दुमात्र विशेषतः ।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति सजीवकं ॥

इस भाव के और भी श्लोक हैं।

१७१ सेस—(१) सिर पर पृथिवी धारण करने वाले शेष नाग। (२) बचा खुचा, बाकी बचा वा कुछ नहीं।

१७२ करि—हाथी ।

धाक—रोब ।

भावार्थ—समर्थ होकर भी जो भगवान से डरते हैं, उनकी तुलना हाथी से की गई है।

१७३ रीते—खाली रहने पर, भूखे।

अनरीते—अनीति, पाप। 'बुभुक्षितं किन्न करोति पापं'।

बिगारत दीठ—बदमाशी करता है।

१७४ कसकत—कष्ट देती है।

समय चूक की हूक—अवसर निकल जाने का पछतावा।

१७५ लबार—झूठा, गप्पी।

पत-राखन हार—लाज रखनेवाला।

भावार्थ—यदि श्रीकृष्ण बात रखनेवाले हैं तो रहीम का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता; चाहे वह जुआरी हो, चोर हो, वा लबार हो—क्योंकि भगवान ने जुआरी शकुनी से पाण्डवों की रक्षा की थी, ग्वाल-बालों को ब्रह्माजी ने चुराया था तब भगवान ने उनको छुड़ाया था और लबार दुःशासन से द्रौपदी की रक्षा की थी।

१७६ खोटी आदि की—जिसका आरम्भ बुरा है।

परिनाम—अन्त, नतीजा।

तम—अँधेरा।

१७७ आपु—अहंकार।

भावार्थ—यदि मन में अभिमान वा अहंकार है तो भगवान नहीं हैं, और जो भगवान हैं तो मन में अहंकार को स्थान नहीं। दोनों एक साथ मन में नहीं रह सकते।

यथा—जब मैं था तो हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥ [कबीर]

१७८ घरिया रहँट की—खेतों में पानी सींचने की एक प्रकार की चर्खी का मिट्टी का पात्र।

रीति ही—खाली ही।

यथा —'हरिवंश' अरहट की घरी, ज्यों कुमीत की ईंठ।
जब खाली तब सनमुखी, जब संभर तब पीठ ॥ [गुणगंजनामा]

दिया—दीवला।

१७९ भावार्थ—सीधी उँगली से घी नहीं निकलता।

१८० दिनन को फेर—भाग्य का चक्र, बुरे दिन।

१८१ दमामो—धौंसा, नगाड़ा।

यथा—कैसे छोटे नरनुतें, सरत बड़न को काम।
मढ़यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम ॥ [बिहारी]

१८२ जगत-बड़ाई—लोकप्रियता वा जगत में प्रशंसा।

नाभाजी कृत भक्तमाल के आधार पर प्रियादास के पुत्र वैष्णवदास-कृत 'भक्तमाल प्रसंग' में 'व्यास' कवि के नाम से यह दोहा है—

'व्यास' बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्रीति करे मुख चाटई, बैर करे तन हान ॥

१८३ रहिमन जग...नैन—जगत में अपने जीवन में ही किसी को बड़ाई नहीं मिली।

अछत—जीते रहने पर भी।

गथ—कोप, धन। रावण के रहते ही बन्दरों ने लंका लूट ली थी।

१८४ जाके बाप को—मेघ का पिता समुद्र।

गैल —मार्ग।

कालिमा—काली।

१८६ कहिगै सरग पताल—उलटा सीधा बक गई।

१८७ उखारी—ऊख का खेत।

रसमरा—ईख के खेत में ईख के साथ उगनेवाला पौधा विशेष।

भावार्थ—अच्छी संगति से दुष्ट लोग नहीं सुधरते।

१८८ कहै वाहि के दाव—उसी की हाँ में हाँ मिलावे।

बासर—दिन।

कचपची—छोटे-छोटे तारों का समूह विशेष; कृत्तिका नक्षत्र।

भावार्थ—यदि यहाँ ठहरना चाहते हो तो मालिक की हाँ में हाँ मिलाओ। वह दिन को रात कहे, तो तुम आकाश में तारे दिखाओ।

अगर शहरोज़ रा गोयद शब अस्त ईं।
बबायद गुफ़्त ईनक माहो परवीं॥ [शेख़सादी]
जाट कहे सुन जाटनी यही गाँव में रहनो।
ऊँट बिलाई ले गई तो हाँजी हाँजी कहनो॥

१८९ ठठरी धूरि की—मनुष्य देह।

गाँठ युक्ति की—ईश्वर द्वारा गठित युक्ति पूर्ण प्राण की गाँठ।

१९० पयान—चल देना।

१९१ परे मामिला—काम पड़ने पर, मुकदमा लगने पर।

१९२ करी—हाथी।

भावार्थ—हे प्रभु! आपने मेरे साथ वही बताव किया है जो अन्य हाथियों ने गजेन्द्र के साथ किया था। विपत्ति में उसके साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया था।

१९४ मुँह स्याह—खिजाब लगा कर बाल काले करना।

परतिया—पराई स्त्री।

१९५ दरिद्रतर—अति दरिद्र।

भावार्थ—दानी गरीब भी हो तो उससे याचना करनी चाहिए। जैसे नदियों के सूख जाने पर लोग कूओं को नदी-तल में खुदवाते हैं।

१९६ बड़ेन किए घटि काज—अपनी हैसियत से छोटे काम किये। पाण्डवों ने अज्ञातवास में अलग-अलग रूप धारण कर राजा विराट के यहाँ नौकरी की थी और राजा नल ने जूए से अपना सर्वनाश कर, दमयन्ती को छोड़ राजा ऋतुपर्ण की घुड़शाला में नौकरी की।

१९९ कामादिक को धाम—जो सब पापों का घर है।

२०० विथा—व्यथा, दुःख।

गोय—गुप्त, छिपाकर ।

अठिलैहैं—हँसी करेंगे ।

२०१—देखो दोहा नं० ५८

२०२ यथा—जिहि प्रसंग दूखन लगे, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारिन हाथ ॥ [वृन्द]

२०३ बिकार—हानि ।

संपुटी—जल-घड़ी का पात्र ।

घरिआर—घड़ियाल, घंटा ।

भावार्थ—जलघड़ी का पात्र तो जल ग्रहण करता है वा चुराता है और मार पड़ती है घंटे पर ।

२०४ शिवि—राजा शिवि जब बानबे यज्ञ कर चुके, तब इन्द्र विघ्न डालने के हेतु अग्नि को कबूतर और स्वयं बाज़ बन कर उसका पीछा करता हुआ यज्ञ में पहुँचा । कबूतर प्राण-रक्षा के लिये राजा शिवि की गोद में जा गिरा । जब बाज़ ने अपना भक्ष्य कबूतर माँगा तो राजा कबूतर के बराबर अपना माँस तोल कर देने लगा । परन्तु राजा का सारा माँस तुल गया और फिर भी कबूतर के बराबर न हुआ । अन्त में ज्योंही राजा अपना सिर काट कर तराजू पर रखने लगे त्योंही भगवान प्रगट हो गए और राजा को अपने लोक भेज दिया ।

दधीचि—देवता गण जब वृत्रासुर को न हरा सके और वह दानव उनके सब शस्त्रों को निगल गया तब देवताओं ने घबरा कर भगवान की स्तुति की और यह वर प्राप्त किया कि दधीचि ऋषि की हड्डियों का अस्त्र बना कर वे वृत्रासुर को मार सकेंगे । देवताओं ने दधीचि ऋषि से प्रार्थना की और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक देह त्याग कर हड्डियाँ देदीं । देवताओं ने उनका शस्त्र बना कर अन्त में वृत्रासुर को मार डाला । परोपकार के लिये त्याग की ये दोनों कथाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं ।

करत न यारी बीच—मोह-माया नहीं करते। पूर्ण त्याग दिखाते हैं।

२०५ पानी—मोती की चमक, मान, प्रतिष्ठा, कान्ति, जल।

सून—शून्य, कुछ नहीं।

ऊबरे— बचे।

२०६ पैंड़ा—मार्ग।

निपट—अन्यन्त, एकदम।

सिलसिली—फिसलनी, चिकनी।

बिछुलत—फिसलता है।

पिपीलि—चींटी।

२०८ सराहिए—बड़ाई कीजिए।

भावार्थ—चूने और हलदी का सा मेल हो उस प्रीति की प्रशंसा करनी चाहिए। चूना अपनी सफेदी और हलदी अपना पीलापन छोड़ कर दोनों लाल-रंग हो जाते हैं।

यथा—हरद चून रँग पय पानी ज्यों, दुबिधा दुहु की भागी। [सूर]

२०९ बिआधि—व्याधि, आफ़त, बीमारी।

यथा—फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो व्याव।
'तुलसी' गाय बजाय के, देत काठ में पाँव॥ [तुलसी]

२१० भेषज—दवाई, इलाज।

राम भरोसे जे रहें, परवत पै हरियाँय।
'तुलसी' बिरवा बाग के सींचे ही मुरझाँय॥ [तुलसी]

२११ अगम्य—जो मन बुद्धि से परे हैं। ईश्वर-विषयक ज्ञान।

२१२ आदि—शुरू।

बावनै—वामनावतार हुआ तो छोटा ही था परन्तु उसने बलि को जब ठगा और तीन पैर में ही समस्त भूमंडल और स्वर्गादि नाप डाला तब शरीर का आकार अत्यन्त बढ़ा लिया। पर नाम वामन ही रहा।

२१५ मभ्भाव—पैठाना, डालना ।

२१६ अनूप—निराली, बेमिसाल ।

मख—यज्ञ ।

२१७ मैन-तुरंग—मोम का घोड़ा ।

पावक—अग्नि ।

पंथ—मार्ग ।

यह दोहा लालन कवि के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

२१८ बावन आँगुर गात—वामन जी का शरीर बाँवन अंगुल का था । दोहा २१६ में भी यही भाव है ।

यथा—सब ते लघु है माँगिबो, जामें फेर न सार ।
बलि पै जाँचत ही भए, बामन तन करतार ।। [वृन्द]

२१६ पछोरना—फटकना ।

गरुए—भारी ।

हलुकन—हलके वा नीच मनुष्य ।

गरुवे—गम्भीर, सज्जन ।

२२० गोत—वंश ।

बड़री—बड़ी ।

लखि बढ़वार सुजातिया अनख धरे मन माहिं ।
बड़े नैन लखि अपुन पै, नैना सही सिहाहिं ।। [रसनिधि]
बढ़त आपनो गोत को, और सबे अनखाँहिं ।
सुहृद नैन नैना बड़े, देखत हियो सिहाहिं ।। [रसनिधि]

२२२ सील—शील, सम्मान ।

समूच—पूरा । दोहा १९० में भी यही भाव है ।

२२३ रहिला की भली—चने की रोटी अच्छी ।

देखो सोरठा—नं० २७६

परसत—छूते ही ।

२२४ तरैयन—तारे।

भावार्थ—वही राज्य प्रशंसा के योग्य है जो चन्द्रमा के समान सुखदायक हो। सूर्य तो नक्षत्रों को अदृश्य कर अकेला ही तपता है। कहते हैं कि यह दोहा रहीम ने उस समय लिखा था जब जहाँगीर ने राज्य सिंहासन के लिये अपने भाइयों का वध किया था।

२२५ खर-खली जो पशुओं को खिलाई जाती है।

गुर-गुड़।

गुलियाए—जबरदस्ती गले में डालकर खिलाना।

'दोहासार संग्रह' में इस प्रकार दिया है—

रामनाम लीनो नहीं, रह्यो विषय लपटाय।
घास चरै पशु आपसों; गुड़ गाल्यो ही खाय॥

२२६ नै चलो—नम्रतापूर्वक चलो।

२२७ पौर—ड्योढ़ी, पौरी, मर्य्यादा।

प्रीतिकी पौरि—मित्रता का बर्ताव।

मूकन—मुक्का।

मूकन मारत...दौरि—पैर दाबने के बहाने जो पैरों पर मुक्के भी मारे जाँय तो भी निद्रा शीघ्र आ जाती है।

२२८ घट गुन सम—घड़े और रस्सी के समान।

२२९ राग सुनत...खाय—राग को सुननेवाला और दूध पीने-वाला सर्प (स्वभाव में मृदु होना चाहिए परन्तु) भी अपने हित को काट लेता है।

यथा—दुष्ट न छाँड़े दुष्टता, पौंखे राखे ओट।
सरपहिं केतो हित करो, चपे चलावै चोट॥ [वृन्द]

२३० ढारत ढेकुली—गराड़ी द्वारा कूँए से पानी खींचते हैं।

२३१ चोरी करि होरी रची—होली के लिए चोरी कर ईंधन इकट्ठा किया जाता है।

२३२ जस—यश।

विषान—विषाण, सींग। चाणक्यनीति के श्लोक के आधार पर यह दोहा रचा गया है—

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुविभारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

२३४ भावार्थ— जिसने याचना की वह मरे मनुष्य के समान है परन्तु जिन्होंने याचक को कोरा जवाब दिया उन्हें उससे भी पहिले मरा समझना चाहिए। माँगना बुरा और माँगनेवाले को न देना उससे भी बुरा।

२३५ 'अहमद' गति अवतार की, सबै कहत संसार।
बिछुरे मानुस फिर मिलें, यहे जान अवतार॥ 'अहमद'

२३६ सहिकै—सहन करके।

बिसाहियो—मोल लेना।

२३८ जम के किंकर—यमदूत।

कानि—प्रतिष्ठा।

२३९ उपाधि—काम, क्रोधादि।

बादि—व्यर्थ की बकवाद।

यथा—रामनाम जान्यो नहीं, जान्यो विषय सवाद।
तुलसी नरवपु पाइ कै, जनम गँवायो बाद॥ [तुलसी]

२४० गोत—वंश, गोत्र।

भावार्थ—सबसे हिलमिल कर रहना ही ठीक है, क्योंकि शत्रु, हितु, मित्र और कुल जो इस जन्म में हैं वे अगले में न होंगे।

२४१ भावार्थ—रूप कथा पद सुन्दर वस्त्र, सोना, दोहा और रत्न का वास्तविक मूल्य सूक्ष्म दृष्टि से देखने से ही जाना जाता है।

२४३ रौल—हुल्लड़, आन्दोलन ।

इस दोहे में रहीम का नाम नहीं है ।

२४४ आनकी आन—कुछ का कुछ, दूसरी ही बात ।

मगरु स्थान—मगध देश ।

ऐसा विश्वास है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है क्योंकि शिव-जी स्वयं ज्ञानोपदेश करते हैं और मगध में मरने से मुक्ति नहीं होती । भक्तमाल में ऐसी एक कथा है कि एक पुरुष काशी-वास करने लगा और इसलिए उसने अपने हाथ पैर काट डाले कि अंत समय वह काशी से बाहर न चला जाय । परन्तु दुर्भाग्य से एक चंचल घोड़ा उसे मगध में ले गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई ।

२४५—यह दोहा चाणक्यनीति के एक श्लोक के आधार पर है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् द्रुमालय पक्व फलाम्बु भोजनम् ।

तृणानि शैय्या परिधान वल्कलम् न बंधु मध्ये धनहीन जीवनम् ॥

२४७ अवधि—सीमा, अंत ।

खद्योत—पटवीजना, जुगनू ।

भावार्थ—विरहरूपी काले मेघ के अन्त में आशारूपी प्रकाश की झलक है । जैसे भादों की अंधेरी रात में पटवीजने चमकते हैं, उसी तरह आशा का थोड़ा प्रकाश विरह के अंधकार में है ।

२५० अटकै काम—काम पड़े ।

२५१ लसकरी—सैनिक ।

सेल्ह—भाला ।

जगीरै—जागीर ।

२५३ सभा दुसासन......भीम—द्रौपदी का चीर दुश्शासन ने भरी सभा में खींचा और भीम गदा लिये देखा किये । समय का फेर !

२५५ देखो दोहा नं० १७४ ।

२५७ पच्छ—पंख ।

'पर दार उड़े फिरते हैं बे पर का खुदा हाफ़िज़ ।'

२५८ रथ-कूबर—रथ का वह भाग जिस पर जूआ बाँधा जाता है ।

२५९ तुरिय—मोक्ष की अवस्था ।

परा—श्रेष्ठ, सपूत ।

भावार्थ—श्वाँस, जिससे सोऽहम् की ध्वनि निकले और योग की ऊँची अवस्था प्राप्त हो, निश्चल चित्तवाली स्त्री और घर में सपूत बेटा ये तीनों पवित्र हैं ।

'शिवसिंह सरोज' में यह दोहा 'रजब' के नाम से दिया है ।

२६० जोगिता—योगीपन ।

भावार्थ—साधु लोग साधुता और जती लोग योगीपन की प्रशंसा करते हैं, परन्तु शूर की प्रशंसा उसका बैरी करता है ।

२६१ यह दोहा 'अहमद' के नाम से भी मिलता है ।

यथा—या दुनिया में आइके, छोड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना है सो लेइले, उठी जात है पैंठ । [कबीर]

२६२ सनत—सदा रहनेवाली ।

यथा—"संपत के सब ही सगे, दीनन को नहिं कोइ" ।

२६३ संपति भरम गँवाइ के—किसी चक्र में पड़ पैसा खो देने पर ।

भावार्थ—जब किसी व्यसन के फेर में पड़कर कोई मनुष्य अपना धन खो बैठता है तो उसकी दशा दिन के ज्योतिहीन चन्द्रमा की सी हो जाती है ।

२६४ खोटी—बुरी ।

यथा—जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात ।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात ॥ [वृन्द]

२६५ सीम—सीमा, हद ।

२६६ भुवन भान—सूर्य का प्रकाश सब जगह फैलता है ।

घटि—क्षुद्र ।

यथा—मूरखगन समुझैं नहीं, तो न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥ [वृन्द]

२६७ सर—शर, तीर।

पूर—चढ़ाकर।

भावार्थ—जैसे तीर चढ़ाकर अपनी ओर खींचते हैं और फिर कमान से दूर फेंक देते हैं। भगवान ने मुझे उसी प्रकार एक बार तो अपनी ओर खींचा अथवा कृपा की और फिर दूर फेंक दिया (विस्मृत कर दिया) भक्तमाल में कथन है कि श्रीनाथजी के मंदिर में जाने में रुकावट होने पर यह दोहा रहीम ने कहा है।

२६८ बसात—शक्ति के अनुसार।

२६९ कदाचि—कदाचित्। देखो दोहा नं० १२१

२७० ढिग—पास।

बढ़िहू—बड़ा होकर भी।

तार—ताड़ का वृक्ष।

भावार्थ—जिस बड़े आदमी से न तो कोई आश्रय प्राप्त होता है और न उससे लाभ ही मिलता है वह तार या खजूर के वृक्ष के समान है। ये वृक्ष ऊँचे होते हैं, छाया दूर और थोड़ी होती है। फल भी बहुत ऊँचे पर होते हैं।

सोरठा

२७१ तातो—जलता हुआ।

सीरे पै—ठंडा होने पर। देखो दोहा नं० १६८

यथा—'अहमद' तज्यो अँगार ज्यों, छोटे को सँग साथ।
सीरो कर कारो करे, तातो जारे हाथ ॥ [दोहासारसंग्रह]

२७२ साहब—प्रभु, ईश्वर।

२७३ परतीति—मालूम होता है। देखो दोहा नं० ६० का पूर्वार्द्ध।

यथा—प्रीति जो सीखो ईख सों, जहाँ जुरस की खान।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की बानि ॥ [सभाविलास]

२७४ पखान—पत्थर।

सीझै—नम्र होना। यह सोरठा दोहे के रूप में भी प्रसिद्ध है।

२७५ बहरी—शिकारी पक्षी विशेष।

तिरै—उतरै।

२७६ अमी—अमृत।

बरु—अच्छा है।

२७७ हेरनहार—देखनेवाला (यह 'अहमद' के नाम से भी प्रसिद्ध है)

यथा—कौन कतरा है जो दरिया नहीं हो सकता है। [चकबस्त]

नगर शोभा

१ आदि रूप—आदिपुरुष, परमेश्वर।

दुति—द्युति, छबि, शोभा।

रसन—रसना, जिह्वा।

२ काँति—कान्ति, शोभा।

३ पाय—पद, चरण।

४ परजापति—प्रजापति, सृष्टिकर्ता।

परमेश्वरी—दुर्गा, शक्ति।

५ रतिराज—कामदेव।

पचि—पकाकर।

६ पारस पाहन—पारस पत्थर, स्पर्श मणि।

९ कैथनि—कायस्थ जाति की स्त्री।

पातो—पत्री, चिट्ठी।

मैन—कामदेव।

सरवा—सकोरा, मिट्टी का पात्र विशेष।

२८ वाक—वचन, शब्द।

भमे—भ्रमण करना, घूमना।

२९ लुहार—लोह के समान, लोहित, लाल, रक्त, रुधिर-रंजित।

३० ताइके—गरम करके।

३२ गजक—पापड़, दालमोंठ, चाट आदि चरपरी वस्तु जो मद्पान के बाद मुख का स्वाद बदलने के हेतु खाई जाती है।

३३ दह्यो—दही।

गोरस—(१) दूध (२) इन्द्रियों का सुख।

यथा—गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नेकु न पै हो।
—[रसखान]

३४ कोल—इकरार, वायदा वचन देना।

३५ काछिन—शाक, तरकारी बेचनेवाली।

३६ भाटा—बैगन।

मूरा—मूली, शाक विशेष।

लौका—घीया, शाक विशेष।

३७ रकत—रक्त, रुधिर।

३८ बरुनी—पलकों के बाल।

लेह—कदाचित पाठ 'लेइ' है।

टेइ—धार पेनाना अथवा तेज करना।

यथा—कुबरी करी कुबलि कैकेई।
कपट छुरी उर-पाहन टेई॥—[तुलसी]।

३९ तवाखनी—(तवाक—बड़ा थाल) स्त्री विशेष, जो शोरवा इत्यादि बड़े थाल में रखकर बेचती है।

सुरवा—शोरवा।

४० परसो—परोसा हुआ, थाली में रख सामने खाने के हेतु लाया हुआ भोज्य पदार्थ।

अघात—तृप्त होना।

४१ बेलन—कोल्हू की लाट।

४२ करुवो—कड़वा।

४३ पाटंबर—रेशमी वस्त्र।

पटइन—पटवा की स्त्री।

४४ सात—समेत, साथ।

फूँदी—इजारबंद की गाँठ।

फोंदना—फूल के आकार की गाँठ, झब्बा।

४७ गुमान—गर्व, मान, घमंड।

कमागरी—कमान बनानेवाले की स्त्री।

४९ तीरगरन—तीर बनानेवाले की स्त्री।

५० सरीकन—सलाख़, छड़ जिसके तीर बनाते हैं।

सरेस—एक चिपकने वाला पदार्थ जो पशुओं की खाल, खून, सींग, हड्डी आदि से बनाया जाता है।

५१ छीपन—कपड़ा छापनेवाली, छीपी जाति की स्त्री।

५२ मैन—कामदेव।

५३ सिकलीगरनि—हथियार माँजकर चमकानेवाली।

औसेर—उबटन, सिकल करने के पहिले जो चिकनाई जाती है।

मुसकला—धातु चमकाने के लिए मसाला रगड़ने का एक औजार विशेष।

५४ अनंग—कामदेव।

५५ सका—शंका।

सक्कनि—भिश्तिन, पानी भरनेवाली।

सरम—लाज।

चिबुक—ठोड़ी।

५७ गाँधिनि—सुगंधित तेल, इत्र बेचनेवाली।

५८ चोवा—चोआ, अनेक सुगंधित द्रव्यों का रस।

चिहुरन—केश, बाल।

६१ तुरकिन—तुर्क देशवासिनी।

तरकि—बिगड़ना, झुँझलाना।

६२ जार—जाल, फंद।

प्राण इजारे लेत है—प्राणों पर अधिकार कर लेता है।

इजार—सुथना, पायजामा।

६३ सिंगी—योगियों का वाद्य विशेष जो सींग का बनता है।

६४ मुद्‌रा—मुद्रा।

६५ हटकी—रुकी रहना, स्थिर होना।

६६ चेरी—चेली दासी, राजपूतानावासी एक जाति विशेष की स्त्री।

माती—उन्मत्त, मतवाली।

जँभुवाइके—आलस्य तथा निद्रावश विशेष प्रकार से साँस लेने की क्रिया करके।

अँगराइ—देह तोड़ना, देह तानकर सुस्ती दूर करना।

७१ नटबंदनी—नटिनी, कलाबाजी दिखानेवाली।

७५ कंचनी—वेश्या।

७७ विभासे—विभास नामक राग विशेष को।

७८ अहेरी—शिकार।

८१ पातरी—पातुरी।

८४ जुकिहारी—जोंक लगाने वाली।

८६ खटकनि—खटीकनी, खटिक जाति की स्त्री।

८८ कुन्दी—लकड़ी की मोगरी से इस्त्री किया हुआ वस्त्र।

८९ महिमही—मिट्टी मिला जल, कीचड़।

बसन बसेधी बास—कपड़ा में बसी हुई बास ।

९० सवनी गरनि—साबुन बनाने वाली ।

९३ भूहन—भृकुटी, भौंह ।

आरे—लकड़ी चीरने की दाँतीदार लोहे की पटरी ।

९४ कुन्दन सी—सोने के पत्र के समान चमकती हुई ।

कुन्दीगरनि—कपड़ों पर लकड़ी की मोगरी द्वारा इस्त्री करने वाली ।

९५ मोगरी—कूटने के लिए लकड़ी का टुकड़ा ।

९६ धुनियाइन—रूई धुनने वाली ।

९८ कोरनि—कपड़े बुनने वाली नीच जाति ।

क्रूर—निर्दय, अरसिक ।

ताना—वस्त्र की लम्बाई के अनुसार फैलाया हुआ सूत । कपड़े बुनने के समय उस पर बार बार ताना डालने के लिये मुँह में पानी भर कर कुल्ली द्वारा सब जगह छिड़का जाता है ।

१०० दवगरनि—कुप्पा बनाने वाली ।

१०१ कुपर—कुप्पा ।

१०२ नगारचनि—नक्कारा धौंसा बजाने वाली ।

१०४ दलालनी—दलाली करने वाली ।

१०६ ठठेरनी—बर्तन बनाने वाली ।

१०७ गडुवा—लोटा, बड़े पेट का पात्र ।

१०८ कागदनि—काग़ज़ बनाने वाले ।

१०९ गुड़ी—पतंग, चंग ।

११० मसिकरनि—स्याही बनाने वाली ।

मसि—स्याही ।

खिन—थोड़ी ।

चखटौना—आँखों द्वारा किया गया जादू ।

११३ सिचान—पक्षी विशेष, बाज़ ।

११४ जिलोदारनी—जिलेदार की स्त्री ।
११६ भंगेरनी—भाँग बेचने वाली ।
११७ हरुवेई—सुगमता पूर्वक ही ।
११८ बोजागरनि—मदिरा बेचने वाली ।
११६ मत—मति, बुद्धि ।
१२० चीतावनी—चीता पालने वाली ।
१२१ बैसिगरूर—यौवन का गर्व ।
लाक—कमर, कटि ।
१२२ कठिहारी—लकड़हारिन ।
१२४ घासिनि—घास बेचने वाली ।
१२६ डफालिनी—डफ बजाने वाली ।
१२८ गड़िवारिन—गाड़ी चलाने वाली ।
शिव-बाहन—बैल ।
१३१ काँछु—पहिन कर, धारण कर ।
बाला—स्त्री ।
कलाव—हाथी के गले की रस्सी ।
ताव—उत्साह, जोश, हिम्मत ।
१३२ सरवानी—ऊँट चलाने वाली ।
छाग—बकरी ।
१३३ मुहार—ऊँट की नकेल ।
१३४ नाल बंदिनी—घोड़े की नाल बाँधने वाली ।
नाल—पास ।
नाल—घोड़े के सुम के नीचे लगाने का अर्धचन्द्राकार लोहे का टुकड़ा ।
१३५ खिरवादारनि—साईस ।
खरहरा—छोटे दाँतों की लोहे की कंघी

१३६ मूठी—घोड़े के सुम और रखने के बीच का भाग, पतली, क्षीण। कटि की क्षीणता की उपमा मूठ से दी गई है।

खीन—क्षीण, पतली।

१३७ लुबधी—लोभी, आकाँक्षी।

लुगरा—वस्त्र, कपड़े।

१३८ गदहरा—गधा।

१३९ लेत चलाओ चाम के—चमड़े का सिक्का चलाना चाहती है।

१४० अधोरी—उलटा चमड़ा।

१४१ चूहरी—मेहतरानी, भङ्गिन।

बरवै नायिका भेद

१ तुलै—तुल्यता, योग्यता, समता।

रसकंद—रस की खानि, रसमूल।

२ बेधक—छेदनेवाला, हृदय को चीरनेवाला।

अनियारो—तीक्ष्ण, पैना।

बान—वाण, तीर।

३ सरदवा—शारदा, सरस्वती।

बरैवा—बरवा नामक छंद विशेष, इसे ध्रुव अथवा कुरंग भी कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार है—

'विषमनि रवि कल बरवै, सम मुनि साज।'

खोरि—खोट, दोष, अवगुण।

४ कोरिवा—कोर

पैंजनिया—पैर में पहिनने का बजनेवाला आभूषण।

मग ठहराय—मार्ग में चलने में अटकती है।

५ किनरिया—किनारी।

बिथुरे—खुले हुए।

यह बरवै हमारी तथा पं० कृष्णविहारीजी की प्रति में नहीं है। शिवसिंहजी तथा अन्य लेखकों ने इसे रहीम कृत माना है।

६ नवेलिअहिं—नवेली स्त्री, नायिका को।

मनसिज बान—कामदेव के वाण, कामजनित विकार वा पीड़ा।

उरुजवा—उरोज, कुच।

दिग—दृग, नेत्र, चितवन, दृष्टि।

तिरछान—तिरछी होने लगी।

७ करेजवा—कलेजा, हृदय।

लाइ—अग्नि की लपट, लाय, ज्वाला।

८ औचक—अचानक, सहसा।

गोइअवाँ—सखियों का, सहेलियों का।

भल—भला, अच्छा।

९ भाव—इच्छा, रुचि।

कजरवा—काजल।

चाव—अभिलाषा, इच्छा, चाह।

१० जंघनि—जंघाओं को।

गोरिया—गोरी, नायिका।

करत कठोर—कड़ा करती है।

कुचकोर—कुचाग्र।

११ लाज जोरावरि है बसि—लाज के कारण विवश होकर।

करत अकाज—न करनेयोग्य कार्य करती है।

१२ भोरहि—प्रभात होते ही।

घर अलिया—कोयल। (मूल में पाठ गलत छप गया है)।

ताप—दुःख, वेदना, जलन।

१३ गैल—मार्ग, रास्ता।

१४ नाधुन टेर—न वंशी की ध्वनि और न नायक की टेर।

१५ देवतवा—देवता।

१६ कटील—कंटक-पूरित, काँटोवाली।

पटनील—नीलाम्बर नीला वस्त्र।

१७ सुगना—सुग्गा, तोता।

चोटार—तेज, पैनी, धारदार।

१८ पाथ—जल।

घन—सघन।

१६ कुसुमिया—कुसुम, फूल।

बरिया—बारी जाति की स्त्री जो पत्तलें बनाया करती है।

केरि—की।

कूर—अनसमझ, नादान।

२० नथुनिया—नथ, नाक का भूषण।

२१ दियवा—दिया, दीपक।

बारन—जलाने।

२२ पाठान्तर—'कोरवा' के स्थान में 'कजरा' तथा 'मूँदि न' के स्थान में 'सुदिने'

२३ तरुनअहिं—तरुणी स्त्री।

सूल—शूल, दुःख।

पाठान्तर—झरिगो रूख बेइलिया फुलत न फूल।

२४ दवरिया—अग्नि, दावाग्नि।

तकस—देखना, ताकना।

२६ जनि मरु...ऊन—हे नायिका, तू रोकर अपने मन को खिन्न अथवा प्राणों का त्याग मत कर।

ससुररिआ—ससुराल, श्वसुर-सदन।

२७ मितवा—मित्र।
ताकि—देखकर।
२८ अराम—आराम, उपवन, बाग।
२९ नेवतवा—निमंत्रण।
खबरिया—देख रेख।
पाठान्तर—गाँव केर रखवरिया।
३० मैके—मा के घर।
३१ मदमातिल—मत्त, मदमस्त।
हथिया—हथिनी।
हुमकत—ठुमकती हुई, इठलाती हुई। पाठान्तर—ठुमकत।
३२ दाहिन बाम—दाएँ बाएँ, चारों ओर।
ह्वै बस काम—कामदेव के वश में होकर।
३३ लखि छखि...भेख—धनिक (नायक) को देखकर नायिका (धनिअवा) तरह तरह के वेष से श्रृंगार करती है।
अरसिया—आरसी।
३४ कजवा—काज, कार्य।
साधि—साधन करके, पूर्ण करके।
जुरवना—जूड़ा, केशपाश।
दिठ—दृढ़, कस कर।
३५ हरबर—घबड़ाहट से जल्दी जल्दी।
भौपथ खेद—मार्ग में बहुत कष्ट (परिश्रम) हुआ।
स्वेद—पसीना, श्रमकण।
३६ कजरवा—काजल। पाठान्तर—जवकवा।
चुनरिया—चुँदरी, चीर।
३७ जयकवा—जावक, महावर।
अँगोरत—प्रतीक्षा करते हुए।

३८ वक्र—टेढ़ा।

मलिन—कलंक सहित।

विष भैया—विष का भाई चंद्रमा। समुद्र-मंथन के समय विष तथा चंद्र साथही साथ निकले थे इस कारण भाई भाई कहलाते हैं।

चंद बदनियाँ—चंद्रमुखी।

यथा—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।

सिय मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रंक—[गो० तुलसीदास]

३६ रातुल—लाल, रक्त।

मुँगउआ—मूँगा, प्रवाल।

निरस पखान—नीरस पत्थर।

मधुभरल अधरवा—मधु-पूरित ओष्ठ।

४० बेइलिया—बेलि, लता।

बिन पिय सूल करेजवा, लखि तव फूल—तेरे फूल देखकर प्रीतम के वियोग से हृदय में दुःख होता है।

४१ मलतिया—मालती की लता।

हुकरैया—हुड़क, उद्वेगकारी स्मृति।

४२ रातुल—लाल, रक्त।

टेसु—टेसू, पलास।

४३ सिख—शिक्षा।

मान—नख़रा।

ठान—मुद्रा, चेष्टा, ढोंग।

पाठान्तर—'लखि' के स्थान में 'बिन'

४४ निचवा जोई—नीचे की ओर देखकर।

छितिखनि छोर छिगुनिआ—छोटी उँगली (कनिष्ठका) से पृथ्वी खोदती है।

यथा—'चारु चरन नख लेखति धारनी'। [गो० तुलसीदासजी]

४५—ठकि गौ—स्तब्ध हो गया।

पीय—प्रीतम।

बरोठवा—पोली; आँगन तथा द्वार के बीच का भाग।

४६ अनख—डिठौना, काजल की बिंदी जिसे डीठ (नज़र) बचाने को लगाते हैं। यहाँ रतिसूचक काजल के दाग से तात्पर्य्य है। अनख के स्थान में अधर पाठ होता तो अच्छा था।

बिन गुन माल—बिना डोरी की माला।

४७ अँगवैइया—आँगन।

४८ सगेइया—सगे, संबंधी, रिश्तेदार।

परार—पराये।

४९ मीड़हु—दबाना।

५० बरिअइया—बरजोरी से, जबरदस्ती से।

ताकि—ताककर, देखकर।

५१ गवनवा—गौना, द्विरागमन।

५३ मनुहरिआ—मनुहार, अनुनय विनय।

हिमकर—ठंडा करनेवाला, शीतल।

हीव—हिय, हृदय।

५४ जेहि लगि...जिठानि—जिसके लिये ननँद और जेठानी से विरोध किया।

५५ बहु बेरवा—बहुत बार, अनेक बार।

५६ सहेटवा—संकेत-स्थान।

उड़िराइ—तारापति; चंद्रमा।

धनिया—स्त्री, नायिका, युवती।

पाठान्तर—फिरि दुबराय।

५७ बिकरार—बेकरार, उद्विग्न।

५८ पूरि—पूर्ण, बहुत।

५६ अभिसरवा—अभिसार।

६१ गौ जुग जाम जमनिआ—दो पहर रात व्यतीत होगई।

सवतिया—सौत,।

६२ जोहति—देखती है।

बाट—मार्ग, राह।

हाट—बाज़ार।

यह बरवा मूल में छपने से रह गया है देखो 'शुद्धिपत्र'

६३ भिनुसार—प्रभात, प्रातःकाल।

६४ खिरकिया—खिड़की, झरोखा।

६५ भिनुसरवा—भिनुसार, प्रभात।

६६ हरुवे—धीमे धीमे, धीरे धीरे, हलके से।

६७ दुहु कै बार—पाठान्तर 'दे दृगद्वार'।

यथा—सुंदरि सेज सँवारि के, साजे सबै सिंगीर।

दृग कमलनि के द्वार पै, बाँधे बंदनवार ॥—[मतिराम]।

६६ बाल—बाला, नायिका।

७० प्रान पियरवा—प्राणप्रिय, प्राणों का प्यारा, प्राणवल्लभ।

७२ कहल न जाति—कहा नहीं जाता, अकथनीय।

७३ पिरनवाँ—प्राण।

७६ मत्त मतंग—मतवाला हाथी।

यथा—अली चली नवलाहि लै, पिय पै साजि सिंगार।

ज्यों मत्तंग अड़दार को, लिये जाति गड़दार ॥—[मतिराम]

७७ गजपाय—गजपाल, महावत।

७६ धनि—धन्य है!

८१ जरितरिया—जरतारी का। 'होत' के स्थान में 'हेत' पाठ सार्थक है।

८३ गौन—विदेश-गमन, प्रवास।

८४ सुठि—सज्जन, नागर।
ओवरिया—कोठे में, औरा।
८५ टेसुइया—टेसू, पलास।
फैलि—अवहेलना करके।
८६ सुरिति गगरिया—रीती गागर, बिना जल का खाली घड़ा।
८७ सुमिरिनियाँ—सुमिरनी, माला।
बिरहवा—विरह, वियोग।
निबाहु—निर्वाह, काटना, व्यतीत करना।
८८ बधुइआ—स्त्री, नायिका, बधू।
८९ दुअरवा—द्वार।
९१ तीर—निकट, समीप, पास।
९२ जटिल सुहीर—हीराजटित।
९४ उरवा—उर पर, वक्षस्थल पर।
हरवा—हार।
उपरेउ—उभरा हुआ, उपटा हुआ।
हेरि—देखकर।
चित्र पुतरिआ—चित्रलिखित पुतली के समान।
चख—चक्षु, नेत्र। पाठान्तर—मुख।
९५ मनवा—मान, नखरा।
९८ खुरुपिया—खुरपी, घास काटने का एक औज़ार।
छतरिया—छप्पर, पत्तों द्वारा आच्छादित स्थान।
९९ सधवा—साध, इच्छा।
यथा—सपनेहू मन भावतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही में रही, मान करन की साध॥—मतिराम
रात दिवस हौंसे रहे, मान न ठिक ठहराय।
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय॥—बिहारी

१०२ गरबिअवा—गर्व, घमंड । पाठान्तर—डगरिया ।

१०४ ज़ुलुफिया—ज़ुल्फ़ ।

बनसी भाइ—मछली पकड़ने के काँटे की तरह ।

बारबधुइआ—वारबधूटी, गणिका ।

पाठान्तर—जनु अति नील अलकिया ।

बझाइ—फँसा लिया, पकड़ा ।

१०५ गजरवा—गजरा, फूलों का हार ।

१०६ ताकौं—देखना ।

वोहि—उसको ।

अभिमनवा—अभिमानी नायक ।

१०८ भैगा—हो गया ।

पाठान्तर—'रोलिया' के स्थान में टोलवा ।

यथा—दोऊ चोर मिहींचनी, खेल न खेल अघात ।
दुरत हिये लपटाइके, छुवत हिये लपटात ॥—बिहारी

१११ चितसरिया—चित्रशाला ।

औधि बसरवा—अवधि-वासर, अवधि के दिवस ।

११४ गोड़ बरिआ—पैरों के समीप । पाठान्तर—छाकहु बइठ दुअरिया ।

बिजन—बीजना, पंखा ।

११५ बिरवना—पान का बीड़ा ।

पाठान्तर—पिय निज कर बिछवनवाँ, दीन्ह उठाय ।

११६ उपटनवाँ—उबटन ।

बरवै

१ सिसुस यसीस—गणेश ।
३ त्यारन—तारनेवाले ।
४ नागर—चतुर ।
५ सुवन समीर—हनुमान ।
खल दानव बन जारन—दुष्ट दैत्य रूपी बन को जलानेवाले ।
६ जलजात—कमल ।
तिमिर—अंधकार ।
बिलात—बिलीन होते हैं, दूर होते हैं ।
धुरवा—धुएँ के रंग का बादल ।
मुरवा—मोर ।
अँकुरवा—अंकुर; प्रेम का अंकुर ।
९ बाम—स्त्री ।
११ बीज—बिजली ।
सावन तीज—श्रावण शुक्ल तृतीया को झूलने की रीति है ।
१२ अहरात—रात दिन; अहर्निशि ।
१४ मया—दया, कृपा, देखो बरवा नम्बर ६९ ।
१५ दाब—अवसर, संयोग ।
१७ पयान—प्रयाण, यात्रा, विदेश गमन ।
१८ धूम—धुआँ ।
१९ उलहे—उपजे, निकले ।
मदन महीप—मदनराज, कामदेव ।
बिन परतीर—बिना फल का तीर ।
२० सुगमहिं—आसान है ।
गातहिं गारन—शरीर को गलाना ।
२३ मरूके—कठिनाई से ।

२४ मरुतवा—मारुत, पवन ।

२६ गाढ़—गहनता ।

३१ चबाव—अपयश, झूठी चर्चा ।

कुदाव—घात, छल कपट ।

३२ जाग—जगह, स्थान । जन्म भर कितनी ही जगह मारा मारा फिरा किया परन्तु छाया की तरह भाग्य साथ ही रहा ।

३५ छितव—पृथ्वी, क्षिति ।

सुआस—आशापूर्ण, संतोषानुसार, यथेच्छ ।

३७ गनत न—गिनते नहीं हैं, परवा नहीं करते ।

३८ झूरि—जलन, आग, दाह ।

३९ पूठि—पीठ ।

४० शिवआगार—शिवालय ।

४१ चौथ मयंक—भाद्रपद की चौथ का चन्द्रमा ।

४६ तिनौ भरि—तृणमात्र ।

४८ होत बिटपहु नागे—पेड़ों के भी पत्ते गिर जाते हैं ।

४९ चवाइ—चर्चा, निन्दा ।

तन—तनिक ।

५३ कोंधों—किस स्थान में ।

५६ अकह—अकथनीय ।

६० अवधि—निर्दिष्ट समय तक ।

अवधि—अंतकाल, मृत्यु ।

दूस्तर—कठिन ।

६२ भबूक—ज्वाला ।

६४ दवारि—दावाग्नि ।

६६ रहे प्रान परि पलकन दृग मग माहिं—प्राण पलकों पर और नयन मोहन के आगमन के मार्ग की ओर देखते रहते हैं ।

६८ जक—चैन।

६९—देखो बरवा नंबर १४।

७० कलवात—(संस्कृत किल) निश्चित बात।

७५ निसरे—निकले।

८० ब्यावर—जनन क्रिया।

८१ बंसी—(१) मुरली (२) मछली पकड़ने का काँटा।

८२ चकवा पिंजरेहू सुनि, बिमुख बसात—पिंजरबद्ध होने पर भी चकवा चकवी रात्रि में एक दूसरे से विमुख रहते हैं।

८३ ऊजरी—सफ़ेद साफ़।

८४ साखि—साक्षी, गवाह।

८५ दुचिती—अनवस्थित, दो चित्तवाली।

८६ मीगुज़रद—व्यतीत होता है।

ईं दिलरा—इस दिल को।

८७ नव नागर पद परसी, फूलत जौन—कवि परपाटी के अनुसार स्त्रियों के नूपुर सुशोभित चरण-स्पर्श से अशोक कुसुमित होता है।

यथा—'पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां 'पर्कं मासिंजित नूपुरेण'

—कालिदास

९४ ग़र्क—डूबा, मग्न।

अज़—से।

मै—मदिरा, सुरा।

शुद—हुआ।

गीरद—पाये।

९५ ज़द—मारा।

तपीदा—व्याकुल।

मी आयद—आती है।

९६ कै गोयम अहवालम पेश निगार—प्रिय से अपना हाल कैसे कहूँ।

तनहा नज़र न आयद्—अकेला मिलता ही नहीं।

९७ जब स्त्रियों के पति परदेश में होते हैं तब वे काग के घर पर बैठने वा बोलने से पति के आगमन का शकुन देखा करती हैं। यदि काग उड़ाने से उड़ जाय तो पति के शीघ्र आने का शकुन समझती हैं। यदि न उड़ें तो जानती हैं कि पति के आने में देर है यथाः—

काग उड़ावन तिय चली मन में अधिक हरख्ख।
आधी चुरियाँ काग गर, आधी गईं करक्क॥

९९ सिगरी—समस्त। सब मेरे जीवन के पीछे पड़ी हुई हैं।

पिछानि—पहिचान, मेल जोल।

१०० सुधाधर—चंद्रमा।

१०२ पनघटवा—पनघट।

१०३ करमें—हाथों के निकट।

करमें—कर्म; भाग्य।

१०४ पय पानि—दूध और जल।

सवतिया—सौत, सपत्नी।

बिलगानि—पृथक करना।

मदनाष्टक

१ निशीथे—अर्धरात्रि।

रोशनाई—ज्योति, चमक।

निकुंजे—कुंज बन में।

बला—उपाधि।

१ बा—साथ, संग।

चखन—चक्षु आँख, लोचन

कटितट—कमर में।

मेला—बाँधा।

टिप्पणी

सेला—साफ़ा ।

अलि—सखि ।

३ छेलरा—छेला, युवक ।

छुरी—छड़ी, लकड़ी ।

मूंदरी—अँगूठी ।

खूब से खूब—अत्यन्त शोभायमान ।

हस्त—हाथ ।

४ दिलदार—प्यारी ।

ज़ुलफें—अलक, बालों की लट ।

कुलफें—दुख, कष्ट ।

शशिकला—चन्द्रमा की ज्योति ।

५ जरद—पीत पीला ।

गुलचमन—फूल बाग ।

रेखता—फारसी मिश्रित भाषा में गान ।

श्रुति—कान ।

६ तरल—चंचल ।

तरनि—कमल ।

बिदारे—चीरना ।

बिलसति—शोभा देती है ।

७ भुजँग—भुजंग, सर्प ।

कमनैत—धनुष ।

कै गई—कर गई ।

सार—चोट, असर ।

८ पठानी—पठान जाति का—रहीम ।

मनमथागी—कामदेव से पीड़ित ।

फुटकर छंद तथा पद

१ अनियारे—कोरदार नुकीले।

सान—तीक्ष्णता, पैनापन।

विषारे—जहरीले।

अगाधी—अगाध, अथाह।

अन्हात हैं—स्नान करते हैं।

बोरे—डूबे, निमग्न हुए।

घाइक घनेरे—अनेकों के प्राण हरनेवाले।

२ पट—वस्त्र।

साहिबी—बड़प्पन।

३ कै—करके।

तुषार—पाला।

छीरनिधि—क्षीर सागर।

कलानिधि—चन्द्रमा।

४ रावरे—आप।

खोरि—खोट, कसूर।

धाँधबे—जलाने के हेतु।

५ गोहन—खिड़की।

चितई—देखा।

कमनैत—कमान चलानेवाला, धनुषधारी।

दमानक—सुन्दर तीर वर्षा।

निसानो—निसान जिस पर तीर चलाया गया है।

६ बार—देर।

दोय—दो टुकड़े।

गेह—घर।

बीच—भेद भाव।

जिन कीनों हुतो उन हार हिया—जिन्होंने हृदय का हार कर रक्खा था।

नसिया—विमुख हो गया।

रस बार सिया—सीता के सुख के समय।

कर बार सिया पियसा रसिया—रसिक प्रीतम ने सीता जी को बाहर कर दिया।

८ अतुरीन—आतुर।

लगि—प्रेम की लगन।

९ नाधन—आरम्भ करना।

ओट—अदृश्य।

राधन—उबलना, जलाना।

पुण्य न प्यारे...अपराधन—बड़े पुण्यों से तो प्रीतम से भेट हुई परन्तु अपराधों के कुसंग के कारण मौन को धारण करना पड़ा।

सुधानिधि—अमृत पूर्ण।

चितैबे की साधन—दर्शन की लालसा।

१० धर—धरा, पृथ्वी।

खपजासी—नाश होगा।

खुरसाण—सुलतान, बादशाह।

अमर—राणा अमरसिंह।

नहचो—निश्चय, विश्वास।

महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने जहाँगीर से परास्त होने पर खानखाना को निम्नलिखित दोहे लिखे थे। जिसके उत्तर में रहीम ने इस दोहे को लिखा था।

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खाना खान ने; बनचर हुआ फिरंत॥

तुवरासूँ दिल्ली गई, राठोड़ा कनवज्ज।
राणा पयंपे खान ने, वह दिन दीसे अज्ज॥

११ तारायन—तारागण।
गैन—दिन।
कहा जाता है कि इस दोहे के उत्तरार्ध की पूर्ति किसी स्त्री ने की है।

१२—भक्तमाल में लिखा है कि जब श्रीनाथजी रहीम को दर्शन देने स्वयं पधारे थे तब उनकी छवि का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

काछै—पहिने हुए, धारण किए हुए।
पिछौरी—दुपट्टा।
साल—शाल।
विधु बाल—द्वितिया का चंद, बाल चंद्रमा।
विसाल—दीर्घ।
छीनी—हरण किया।
पुरइन—कमल पत्र।
हाल—दशा अवस्था।
१३—उनमानि—अनुहार, समानता।
दसननद्युति—दाँतों की चमक।
चपला—बिजली।
बसुधा—पृथ्वी।
बसकरी—ख़तम कर दी,
सुधा पगी बतरानि—अमृतमयी वार्तालाप।
चढ़ी रहे—विस्मरण नहीं होती।
अनुदिन—प्रतिदिन।
बानि—स्वभाव, टेव।

शृंगार सोरठा

१. यथा—नैन जोर मुख मोरि हँसि, नेसुक नेह जनाय !
आगि लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ॥ मतिराम
फेरि कछुक करि पौरि ते, फिरि चितई मुसकाइ ।
आई जावुन लैन को, नेहहिं चली जमाइ ॥—विहारी

२. तुरक गुरक—असुरों के गुरु शुक्र; वीर्य ।
सुरगुरु—देवताओं के गुरु बृहस्पति; बुद्धि ।
बिनदेह को—अनंग; कामदेव ।

चातक जातक—चातक का 'पी' 'पी' शब्द; पी, पिय, प्रेमी । प्रोषितपतिका का वर्णन है । काम वासना से बुद्धि क्षीण हो जाने पर और प्रीतम के दूर होने के कारण कामदेव को अपना प्रकोप दिखाने का अवसर मिला है ।

३. कर विहीन—दीपक जिसके हाथ नहीं हैं ।

अकवर बादशाह ने समस्या दी थी "किहि कारन डोल में हालत पानी" उसकी पूर्त्ति गंगने इसी भाव पर की थी—

एक समैं जल आनन को घर सों निकसी अवला ब्रजरानी ।
जात संकोल में डोल भरो, जल खेंचत में अँगियाँ मसकानी ॥
देखि सभा छतियाँ उघड़ीं कवि गंग कहे मनसा ललचानी ।
हाथ बिना पछतात रह्यो, इहि कारन डोल में हालत पानी ॥

४ दुति—कान्ति, द्युति, तेज ।

यथा—

(१) सोहे तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठी छतियाँ की ।
जोबन जोति सों यों दमके, उसकाइ दई मानो बाती दिया की ॥
—रसखान

(२) ऐसे में आवत कान्ह सुने हुलसै तरकें तरकी अँगिया की।
यों जगि जोति उठी तन की उसकाइ दई मानो बाती दिया की।।

—रसखान

५ भावार्थ—वेदना की रीति सर्वत्र एक सी नहीं होती। किसी के हृदय में पीड़ा होती है किसी को नहीं होती।

६. जलज—कमल।

मधुकर—भ्रमर, मधुप, भौंरा।

अरघा—अर्घ्य पात्र, अर्व अथवा अंजलि देने का पात्र।

भावार्थ—श्वेत नेत्रों में काली काली पुतलियों की शोभा श्वेत कमल में भौरे के समान अथवा चाँदी के अर्घ्यपात्र में शालग्राम की मूर्ति के समान है।

ध्यान दीजिये

यदि लागत—*केवल लागत—मूल्यपर हिन्दी-साहित्यकी उच्चकोटिकी पुस्तकें पढ़नेका आपको शौक़ है, तो क्यों नहीं काशीकी

सस्ती-साहित्य-पुस्तक-माला

के ग्राहक बन जाते ?

वर्तमान जीवित सस्ती पुस्तक-मालाओंमें सबसे प्राचीन और सबसे सस्ते मूल्यमें पुस्तकें देनेवाली यही एक संस्था है।

अभी भी एक रुपयेमें ग्राहकोंको ७०० सात सौ पृष्ठ देनेवाली और भविष्यमें १००० एक हजार पृष्ठ तक देनेका आयोजन करनेवाली यही एक मात्र संस्था है। कागज, छपाई सफाई आदि सुन्दर।

फिर भी एक और सुभीता—इसके स्थायी ग्राहक चाहे जो पुस्तक लें अथवा न लें, इसके लिए, अन्य पुस्तक-मालाओंकी तरह किसी प्रकारका बन्धन नहीं।

भविष्यमें अपनी एक निश्चित नीतिके अनुसार तथा अबसे अधिक शुद्ध विवेचनापूर्ण पुस्तकें प्रकाशित करनेके लिए हिन्दी-सेवी ख्यातिलब्ध विद्वानोंका मंडल भी सम्पादनके लिए स्थापित किया गया है। सम्पादकीय नीतिके लिए अलगसे विवरण मँगाइए।

---

* जिस किसीको इसमें सन्देह हो वे किसी अनुभवी प्रकाशक अथवा प्रेसवालोंसे लागतकी जाँच कर सकते हैं।

विशेष बातें

इस मालामें वेदान्त, दर्शन, उपनिषद्, न्याय, धर्मशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, वैद्यक, कला-कौशल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवनचरित्र, उपन्यास, नाटक, काव्य, भूगर्भशास्त्र आदि सभी विषयोंकी पुस्तकें प्रकाशित की जाँयगी।

सस्ती साहित्य-पुस्तक-मालाके नियम

१—एक रुपया प्रवेश-शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकता है। यह शुल्क लौटाया नहीं जायगा।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलेंगी।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने न लेनेका अधिकार ग्राहक को होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको जो पुस्तक न लेनी हो, वह सूचना पाते ही उत्तर दें जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनका नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक् कर दिया जायगा। यदि वे पुनः नाम लिखाना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

६—स्थायी ग्राहकोंको साहित्य-सेवा-सदन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें दो-आने रुपये कमीशनपर तथा पुस्तक-भवन-सीरीज की पौनी कीमतपर मिलेंगी।

इस मालाकी पुस्तकें

बंकिम-ग्रन्थावली (प्रथम खंड)-बंकिमबाबूके आनन्दमठ, लोकरहस्य तथा देवी चौधरानीका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५१२ मूल्य १) सजिल्द १।-)॥ द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी।

गोरा—जगद्विख्यात् रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत गोरा नामक पुस्तकका अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ६८८। मूल्य सजिल्द १॥=)

बंकीम-ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड)-बंकिमबाबूके 'सीताराम' तथा 'दुर्गेशनन्दिनीका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य ॥।-)॥

चण्डीचरण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) अर्थात् 'टामकाकाकी कुटिया-Uncle Tom's Cabin के आधारपर स्वर्गीय चण्डीचरण लिखित 'टामकाकार कुटीर' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५९२ मूल्य, १=)॥, सजिल्द १॥)

बंकिम-ग्रन्थावली (तृतीय खण्ड)-बंकिम बाबूके 'कृष्णकान्तेर विल' 'कपाल-कुण्डला' तथा 'रजनी' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ४३२ मूल्य॥।)॥, सजिल्द १≡)

चण्डीचरण ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)—चण्डी बाबू लिखित दीवान गंगागोविन्द सिंहका अविकल अनुवाद। पृष्ठ सं० २६० मूल्य ॥)

वाल्मीकीय रामायण बालकांड—पृष्ठ सं० साधारण साइज के ३८४ मूल्य ॥।)

नोट—सूर, केशव, तुलसी, देव, बिहारी, भूषण, पद्माकर, दास, कालिदास; भारवि, माघ स्वामी विवेकानंद, रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस अरविन्दकुमार घोष, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, रमेशचन्द्र, तिलक रामदास आपटे। जेम्स एलेन, सैमुएल स्माइल्स, टालस्टाय, राल्फवाल्डो आदि आदिकी ग्रन्थावलियाँ भी शीघ्र निकलेंगी।

वाल्मीकीय-रामायण अयोध्याकांड-पृष्ठ सं० साधारण साइजके ७६८ मूल्य १॥)

शुद्धाशुद्धि पत्र

भूमिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२४	बराम खाँ	बैराम खाँ
७	६	खुश	खुशी
७	१६	मदत	मदद
१०	१२	आर	और
१२	३	पृष्ठ ४४४	पृष्ठ ४४४ (चौथा संस्करण)
१२	२४	२९	२७९
१७	१४	लुप्त हो,	लुप्त हो
२३	२६	११९	११४
२४	२६	बाबू बेणीदास	बाबा बेणीमाधवदास
२६	४	चल्यो	चलो
२८	२९	मोहजलधौ	मोहजलधौ
३३	१६	रा॰याग	राजयोग
३४	१४	कबिया	कवियों
३४	१६	टिप्पणा	टिप्पणी
३६	९	भावा	भावों
३७	१	'सरितोद्रमाः'	'सरितोद्रुमाः'
३७	३	सरितोद्रमाः	'सरितोद्रुमाः'
४२	१	थी । *	थी * ।
४८	११	मखान	माखन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	१५	दोना	दोनों
५१	६	गुनै	गुनै
५२	११	हाने का	होने का
५३	३	–रही	—रहीम
५८	१४	संदेह हा	संदेह हो
६३	६	बाता	बातों
६८	९	हर	उर
६९	६	ादन	दिन
७५	१	उक्तिया	उक्तियाँ
७७	१२	नवागरा	नवाबरा
७८	३	मडन	मंडन
७९	८	मेर	मेरु
८१	१०	न्यारी	न्यारो
९१	२०	विनाद	विनोद
९१	२३	दाराशाह	अनुमानतः दाराशाह

रहीम–रत्नावली

दोहावली

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	बात	बातें
३	२४	यदि	यहि
४	९	पृतरा	पूतरा
९	६	ज्या	ज्यों
९	१५	त	तैं
९	१७	त	तैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	८	कंडली	कुंडली
१२	८	कहँ	कहि
१४	२	जदपि	तदपि
१४	२	डरु	वरु
१४	११	से	सों
१४	११	सो	सों
१४	१६	बक–बालक नहिं	बक–बालकनहिं
१५	९	गुन	गन
१५	१७	नवा जो होय	नवा न होय
१७	१	प्रकृत	प्रकृति
१९	२	रमसरा	रसमरा
२४	५	राज	राज कूँ
२५	१२	कहुँ जाहिं	कहँ जाहिं
२६	३	सदर	सुंदर
२६	११	रहाम	रहीम
२७	४	बझे	बूझै

नगर शोभा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१६	जदाप	जदपि
२८	२०	मास	मसि
२९	१०	चारि	चोरि
२९	१९	गात	गत्ति
२९	२१	सास	साँस
३०	११	ानसदिन	निसदिन
३१	३	ालये	लिये

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	२३	।फर	फिर
३२	७	छीप न	छीपनि
३२	१२	फोर	फेर
३२	१९	दृगन	दृग न
३२	२२	छोरन	चिहुरन
३३	१५	चुराय	चुराये
३४	५	लेह	लेहु
३४	९	नृत्य क	नृत्य के
३४	११	केसवा	के सबदि
३८	९	वासन	घासिनि
३८	२३	पात	प्रीत
३९	२	समाय	समाइ

बरवै नायिका भेद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३	७	भरि अलिआ	वरि अलिआ
४३	२०	१५	१४
४४	११	भूतसूरतिगोपना	गुप्ता
४४	१६	भविष्य सुरति गोपना	विदग्धा
४५	१९	लक्षण	उदाहरण
४५	२१	कंज	कुंज
४६	२४	सुन	सून
४७	१	मास	सास
४७	१०	लखन	लखत
४७	२२	देख	रेख
४८	१९	पियमात	पियमति
५१	२०	लखेउ डेराइ	लखि उड़िराइ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	३	नन	नैन
५२	६	॥ ५८ ॥	॥ ५९ ॥
५२	८	सारह	सोरह
५२	१६	मध्या—उत्कंठिताउदाहरण	मध्या—उत्कंठिता-उदाहरण
		जोहति परी पलकिया, पियकी बाट ।	
		बेचेउ चतुर तिरियवा, केहि के हाट ॥६२॥	
		प्रौढ़ा- उत्कंठिता—उदाहरण	
५४	१२	परनवाँ	पिरनवाँ
५६	९	सुरति	सुरिति
५७	३	सुचार	सुचीर
५८	१३	पति उपपतिबेसिकवा, त्रिविध बखान ।	
		विधिसों व्याहो गुरुजन, पतिसो जान॥ ९७॥	
६१	१७	सयनवाँ	सपनवाँ

बरवै

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१४	घुरवा	धुरवा
६४	३	अधरात	अहरात
६४	२४	त्या	त्यों
६५	२	मितत	मिलत
६५	१७	चवाउ	चवाव
६६	७	झर	झुरि
६७	२	माहन	मोहन
६८	१०	प	पै
६८	११	सजना	सजनी
६९	४	बड़े, उसास	बड़े उसास
६९	१४	तिंह	तिहिं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६९	१५	ान्स	निस
७०	१९	कसि	कस
७१	२	तपादा	तपीदा

मदनाष्टक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७४	३	राख	राखें

फुटकर छंद तथा पद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१२	धन...	...धन
७६	१९	बड़ेन सा	बड़ेन सों
७७	२	साख	सखि
७७	८	उनहार	उन हार
७७	१९	दिया	हिया
७९	२	बसरत	बिसरत
७९	६	ढ़ी	चढ़ी
७९	७	नुदिन	अनुदिन
७९	८	बि	छबि

शृंगार सोरठा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८०	१३	कधौं	कैधौं

टिप्पणी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	६	भरत जा	भरतजी
२	१८	नाचो	नीचो
२	२४	१७	१८
२	२४	९१	९२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	वेल भ्रम	भ्रम
४	१	निधन	निधि-न
४	२	चोर	भोर
४	१५	३२	३१
४	२५	कंटकन	कंटकन
७	१६	(यथा संख्या)	(यथा संख्य अलंकार)
८	६		(भावार्थ दोहा नं० ८४ का है)
८	१७	बढ़ाई	बढ़ाइ
८	१८	जाई	जाइ
९	३	७९	८०
१०	७	भुर्जगन	भुजंग-गन
१०	१५	बढ़े	७८ बढ़े
१०	२६		(इस दोहे का भावार्थ पृष्ठ ८ पंक्ति ६ पर छप गया है)
११	१८	रखा है	रक्खा है । चकोर-संबंधी कुछ अनूठी उक्तियां इस प्रकार हैं:-
१३	२२	कथा रामायण की	रामायण-की-कथा
१४	२	उसकी	तो गड़ही के जलकी
१४	१८	तारा हुआ	तपा हुआ
१५	९	है कर	हो कर
१६	६	साहु—मीरवा	साहु—मीर वा
१६	१८	हाथी न	हाथीन
१६	२५	१२	१२६
२०	२	बावन	बावनै

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२६	बेध्य	बेध्यो
२३	१७	चिंता तो	चिता तो
२४	१३	बालों को	बालों की गायों को
२५	३	दिया	१७९ दिया
२९	२३	रसभरा	रसमरा
२८	१२	हलदा	हलदी
२८	२१	ही	हू
३०	२०	हित	हितू
३१	२४	सोता	सोना
३२	४	मगध देश	मगध देश में एक स्थान
३२	६	मगध	मगहर
३२	६	मगध	मगहर
३२	१७	का	की
३३	११	शूर	सच्चे शूर
३६	१९	४४	२४
३८	१७	छीपन	छीपनि
३९	१०	६३	६४
४९	६	गाँव केर	गाव केर
४६	२६	धारनी	धरनी
४७	१३	ताकि	तकि
४८	२३	धन्य है	नायिका